कालीशङ्करसिद्धान्तवागीशकृत क्रोडपत्र के अनुसार पञ्चलक्षणी का समीक्षात्मक अध्ययन

Kālīśaṅkarasiddhāntavāgīśakṛta Kroḍapatra Ke Anusāra Pañcalakṣaṇī Kā Samīkṣātmaka Adhyayana

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की
एम्. फिल्. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघुशोधप्रबन्ध

Dissertation Submitted to the Jawaharlal Nehru University

In partial fulfillment of the Requirement for the Award of the Degree of

Master of Philosophy

शोधनिर्देशक

प्रो. रामनाथ झा

शोधकर्ता

अश्विनी कुमार

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

वर्ष- 2021

RECOMMENDATION FORM FOR EVALUATION BY THE EXAMINER/S

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation/thesis titled काली शंकर सिद्धान्त वागीश कृत कौडपत्र के अनुसार पञ्चलक्ष्मी का समीक्षात्मक अध्ययन submitted by Mr/Ms. ASHVINEE KUMAR in partial fulfillment of the requirements for award of degree of M.Phil/M.Tech/Ph.D of Jawaharlal Nehru University, New Delhi, has not been previously submitted in part or in full for any other degree of this university or any other university/institution.

We recommend this thesis/dissertation be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of M.Phil/M.Tech./Ph.D.

Signature of Supervisor

Date: 22/07/21

Signature of Dean/Chairperson

22/07/21

Date:

Dean (Acting)
School of Sanskrit & Indic Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067, INDIA

School of Sanskrit and Indic Studies

Jawaharlal Nehru University

New Delhi - 110067

Date_____

CERTIFICATE

This dissertation entitled **"कालीशङ्करसिद्धान्तवागीशकृत क्रोडपत्र के अनुसार पञ्चलक्षणी का समीक्षात्मक अध्ययन"** Submitted by **Mr. Ashvinee Kumar** to **School of Sanskrit and Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067** for award of degree of **Master of Philosophy (M.Phil.)** is an original work and has not been submitted so far in part or in full, for any other degree or diploma of any university or institution.

This may be placed the examiner for evaluation of award of the degree of Master of Philosophy.

PROF. SANTOSH KUMAR SHUKLA
(DEAN)

PROF. RAMNATH JHA
(SUPERVISOR)

School of Sanskrit and Indic Studies

Jawaharlal Nehru University

New Delhi – 110067

Date_____

DECLARATION

I declare that the Dissertation entitled **"कालीशङ्करसिद्धान्तवागीशकृत क्रोडपत्र के अनुसार पञ्चलक्षणी का समीक्षात्मक अध्ययन"** submitted by me for the award of degree of **"MASTER OF PHILOSOPHY (M.Phil.)** is an original research work and has not been submitted so far in part or in full, for any other degree or diploma in any other institute or university.

ASHVINEE KUMAR

Research Scholar

School of Sanskrit and Indic Studies

Jawaharlal Nehru University

New Delhi-110067

॥ समर्पण पत्र ॥

जब यह शोध अपनी पूर्णता को प्राप्त कर रहा था, तभी जीवन में एक ऐसी हृदय-विदारक घटना

घटी कि, इस विषय को शोध स्वरूप प्रदान करने वाले मेरे शोध-निर्देशक स्वनामधन्य कीर्तिशेष, प्राच्य एवं पाश्चात्य के उद्भट्ट विद्वान् प्रो. सत्यमूर्त्ति हमारे मध्य नहीं रहे, इस शोध की सम्पूर्णता ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। एवं यह शोध उनके श्रीचरणों में समर्पित किया जाता है।

॥ कृतज्ञताज्ञापन ॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती यज्ञं वष्टु धियावसुः।।

प्रत्येक कार्य के सम्पादन हेतु कई सारे कारण स्वयं उपस्थित हो जाते हैं, उन्हीं कारणों में से प्रमुख कारण परमेश्वर है, उसका धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ कि उसने मुझे अनुपम मानव जीवन प्रदान किया। मेरे पूजनीय पिता श्री रमेश सिँह एवं माता श्रीमती मनोरमा देवी के चरणों में कोटि-कोटि नमन करता हूँ। माता-पिता के आशीर्वाद, स्नेह, प्रेरणा एवं विश्वास के फलस्वरूप, आज मैं इस योग्य बन पाया हूँ कि उनके लिए दो शब्द लिखने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है। जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है 'नरत्वं दर्लभत्वं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभाः'। 'माता गुरुतराभूमेखात्पितोत्वरश्च तथा' महाभारत के इस श्लोक को साक्षात् कृति रुप में धारण करने वाले अपने स्नेह से जिन्होंने मुझे अभिषिक्त किया ऐसे ज्येष्ठ पिता श्री नरेश सिँह एवं माता श्रीमती पार्वती देवी के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन करता हूँ। देववाणी संस्कृत से परिचय कराने वाले एवं उसके मर्म को समझाने वाले श्रद्धेय मेरे गुरुकुल के आचार्य स्वर्गीय आचार्य भूषणलाल शर्मा जी का भी मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।
ऐसे गुरु जिनके विषय में आचार्य धनञ्जय का कहना है -

"कस्यचिदेव कदाचिद्यया विषयं सरस्वती विदुषः।"

घटयति कापि तमन्यो व्रजति जनो येन वैदग्धीम् ।।" को प्रणाम करता हूँ कि उन्होंने मुझे इस योग्य बनाया कि पशुत्व से उठकर मैं विद्यावान् हो सका इसी क्रम में ऐसे आचार्य जिनके विषय में वेद में कहा गया है -

"उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृणवन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः।।"

प्रो.वशिष्ट त्रिपाठी गुरु जी ने इस न्यायरूपी अगाध जलधि को पार करने के लिये अपनी ज्ञान नौका का मुझे आश्रय दिया, एवं अपनी ज्ञानदृष्टि से सभी छात्रों को सिञ्चित करने वाले शिष्यवत्सल, पितृतुल्य प्रो.विष्णुपद महापात्रा उपाख्य गुरुजी जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मुझ जैसे अबोध बालक को न्याय के दुर्गम कण्ट काकीर्ण मार्ग पर चलने हेतु प्रेरणा प्रदान की।
इस शोध को अपने निर्देशन के द्वारा नई दिशा देने वाले मेरे निर्देशक, छात्र हितैषी, भारतीय दर्शन को आधुनिक विज्ञान के साथ तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करने वाले, प्राच्य एवं पाश्चात्य

विधाओं के मर्मज्ञ विद्वान् प्रो. रामनाथ झा जी का भी मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। जिनके आशीर्वाद से यह शोधग्रन्थ पूर्णता को प्राप्त कर रहा है। इस शोधकार्य के निमित्त काशी निवास के काल में वहाँ पर मेरे आवास एवं भोजन की व्यवस्था करने वाले वाराणसी के प्रसिद्ध शिक्षण संस्थान 'श्रीगुरु कार्ष्णि विद्याभवन' एवं इस संस्थान के आचार्य जी का भी धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ कि उनका यह स्नेह भूलाये जाने योग्य नहीं है। न्यायशास्त्र के उद्भट्ट विद्वान्, राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित प्रो. महानन्द झा जी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ कि उन्होंने मुझे अमूल्य परामर्श प्रदान किया।

इस शोध के लिये मुझे विभिन्न ग्रन्थों के अध्यापन कराने वाले आचार्यद्वय प्रो. गणेश्वरनाथ झा जी एवं प्रो. रामचन्द्रशर्मा जी का अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे अपना अमूल्य समय देकर अध्यापन के द्वारा प्रोत्साहित किया।

इसके साथ ही मैं अपने संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान के सङ्काय अध्यक्ष मीमांसादर्शन के पारदृश्वा प्रो. सन्तोष कुमार शुक्ल जी को भी हृदय से प्रणाम एवं धन्यवाद निवेदित करता हूँ। इसी शृङ्खला में संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान के समस्त आचार्यों के श्रीचरणकमलों में नमन करता हूँ। जिन्होंने परास्नातक-पाठ्यक्रम के समय मुझे अपने ज्ञान से अभिसिक्त किया है । न्यायशास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य विरल मण्डिर जी का भी हृदय से धन्यवाद करता हूँ।

इस शोध अवसर पर कुटुम्बजनों को नमन करता हूँ जिन्होंने मुझे शोधप्रबन्ध लिखने के समय पारिवारिक समस्याओं से चिन्ता मुक्त रखा।

इस शोधप्रबन्ध के लिखने में सहायता करने वाले मेरे अनन्य ज्येष्ठ, कनिष्ठ एवं सहपाठियों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ।

इस शोधकार्य में जिन तथ्यों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुआ हूँ, वह सब ईश्वर के अनुग्रह, माता पिता के शुभाशीर्वाद, गुरुजनों से प्राप्तविद्या तथा मित्रों की सहायता के बिना सम्भव नहीं था। अतः पुनः एक बार प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष रूप से इस शोधप्रबन्ध के कार्य में सहायता प्रदान करने वाले सभी के प्रति हृदय से कार्तज्ञ्यभाव को प्रकट करता हूँ।

विनयावनत
अश्विनी कुमार

सङ्केताक्षर सूचि

का.	=	कारिका
त.चि.	=	तत्त्वचिन्तामणि
त.पा.	=	तर्कपाद
त.प्र.	=	तत्त्वप्रदीपिका
त.भा.	=	तर्कभाषा
त.स.	=	तर्कसङ्ग्रह
न्या.कु.	=	न्यायकुसुमाञ्जलि
न्या.को.	=	न्यायकोश
न्या.प.	=	न्यायपरिचय
न्या.भ.	=	न्यायभाष्य
न्या.म.	=	न्यायमञ्जरी
न्या.ली.प्र.	=	न्यायलीलावतीप्रकाश
न्या.वा.	=	न्यायवार्तिक
न्या.वा.ता.टी.	=	न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका
न्या.सि.दी.	=	न्यायसिद्धान्तदीप

न्या.सि.म.	=	न्यायसिद्धान्तमञ्जरी
न्या.सि.मु.	=	न्यायसिद्धान्तमुक्तावली
न्या.सू.	=	न्यायसूत्र
प.त.नि.	=	पदार्थतत्त्वनिरूपण
पृ.	=	पृष्ठ
प्र.पा.भा.	=	प्रशस्तपादभाष्य
व्यु.वा.	=	व्युत्पत्तिवाद
श.श.प्र.	=	शब्दशक्तिप्रकाशिका
स.प.	=	सप्तपदार्थी

विषयानुक्रमणिका

कृतज्ञताज्ञापन **i-ii**

सङ्केताक्षरसूचि **iii-iv**

विषयानुक्रमणिका **v-ix**

विषय-प्रवेश **x-xxiv**

प्रथम अध्याय : व्याप्ति का प्रथमलक्षण **१-३७**

१.१ न्यायदर्शन के अनुसार प्रमाणस्वरूप

१.२ मत विशेष

१.२.१ बौद्धमत

१.३ प्रमाण-भेद

१.३.१ प्रत्यक्ष स्वरूप

१.३.१.१ निर्विकल्पकप्रत्यक्ष

१.३.१.२ सविकल्पकप्रत्यक्ष

१.३.२ अनुमान स्वरूप

१.३.२.१ अनुमिति विवेचन

१.३.२.२ पञ्चावयव

१.३.२.३ अनुमान भेद

१.३.२.४ स्वार्थानुमान-परार्थानुमान

१.३.२.५ हेतु-भेद

१.३.२.६ व्याप्ति का वैविध्य

१.३.२.६.१ अन्वयव्याप्ति

१.३.२.६.२ व्यतिरेकव्याप्ति

१.४ मीमांसक दृष्टि से मणिकार का पञ्चव्याप्तिलक्षण

१.४.१ प्रथमलक्षण उद्भावन में बीज

१.४.१.१ मथुरानाथ का अभिमत

१.४.१.२ समास प्रकार

१.४.१.३ प्रथमलक्षण का परिष्कार

१.४.१.४ सामान्यपद की अनिवार्यता

१.४.१.५ अव्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थल में अव्याप्तिदोषोद्भावनपूर्वक समाधान

१.४.१.६ साध्याभावत्वावच्छिन्न का औचित्य

१.४.१.७ साध्याभावाधिकरण में निरवच्छिन्नत्व विशेषण का उपादान

१.४.१.८ 'सत्तावान् द्रव्यत्वात्' स्थल में अव्याप्ति दोष परिहार

१.४.१.९ मथुरानाथ द्वारा व्याप्तिलक्षणस्वरूप

१.४.१.१० केचित्तु मतानुसार व्याप्तिलक्षणस्वरूप

१.४.१.११ अन्ये तु मतानुसार व्याप्तिलक्षणस्वरूप

१.५ आचार्यों का मत विशेष

१.५.१ दीधिति तथा जागदीशी का मत अभिप्राय

१.५.१.१ प्रथमलक्षण एवं द्वितीयलक्षण

१.५.२ गदाधर का मत विश्लेषण

१.५.३ कालीशङ्कर का अभिमत

द्वितीय अध्याय : व्याप्ति का द्वितीयलक्षण

३८-६१

२.१ द्वितीयलक्षण के उद्भावन में बीज

२.१.१ मथुरानाथ का अभिमत

२.१.१.१ साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व पद का प्रयोजन

२.१.१.२ साध्याभाव पद का प्रयोजन

२.१.१.३ साध्यपद का प्रयोजन

२.२ आचार्यों का मत विशेष

२.२.१ दीधिति तथा जागदीशी का मत विशलेषण

२.२.२ गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण

२.२.३ कालीशङ्कर का अभिमत

तृतीय अध्याय : व्याप्ति का तृतीयलक्षण

६२-६८

३.१ तृतीय लक्षण के उद्भावन में बीज

३.१.१ मथुरानाथ का अभिमत

३.२ आचार्यों का मत विशेष

३.२.१ दीधिति तथा जागदीशी का मत विशलेषण

३.२.२ गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण

३.२.३ कालीशङ्कर का अभिमत

चतुर्थ अध्याय : व्याप्ति का चतुर्थलक्षण

६९-७६

४.१ चतुर्थ लक्षण के उद्भावन में बीज

४.१.१ मथुरानाथ का अभिमत

४.१.१.१ यावत् पद का प्रयोजन

४.१.१.२ साध्याभाव का परिष्कार

४.१.१.३ सकल पद का प्रयोजन

४.२ आचार्यों का मत विशेष

४.२.१ दीधिति तथा जागदीशी का मत विशलेषण

४.२.२ गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण

४.२.३ कालीशङ्कर का अभिमत

पञ्चम अध्याय : व्याप्ति का पञ्चमलक्षण

७७-७९

५.१ पञ्चम लक्षण के उद्भावन में बीज

५.१.१ मथुरानाथ का अभिमत

५.२ आचार्यों का मत विशेष

५.२.१ दीधिति तथा जागदीशी का मत विशलेषण

५.२.२ गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण

५.२.३ कालीशङ्कर का अभिमत

उपसंहार ८०-८४

परिशिष्ट ८५-९१

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूचि

९२-९६

विषय-प्रवेश

मनुष्य जीवन में विद्या का महत्त्व सर्वोपरि है। विद्या के द्वारा ही मनुष्य अमृततत्त्व अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। "विद्ययाऽमृतमश्नुते"[1]। मुण्डकोपनिषद् में "द्वे विद्ये वेदितव्ये"[2] ऐसा कहकर पराविद्या-अपराविद्या नामक दो विद्याओं का स्पष्टतः उल्लेख प्राप्त होता है। ऋषि महर्षियों से लेकर सामान्य पुरुष के जीवन का लक्ष्य भी आत्मतत्त्व का यथार्थ बोध-कर मोक्ष प्राप्ति ही है। विद्या-प्रकार के सम्बन्ध में मनुस्मृति में कहा गया है-

"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश।।[3]
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं च विज्ञेयं विद्या ह्यष्टादशैव तु।।"

इस प्रकार चतुर्दश विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता होता है जिसमें 'न्यायविस्तरः' पद से गौतमीयन्याय एवं वैशेषिकन्याय का बोध होता है। न्यायशास्त्र चतुर्दश विद्यास्थानों में से एक माना गया है।[4] तथा राजशेखर ने स्वविरचित काव्यमीमांसा ग्रन्थ में कौटिल्य के मान्य विद्या-भेदों को आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति नाम से अभिहित किया है- "आन्वीक्षिक्या हि विवेचिता त्रयी वार्त्ता दण्डनीत्योः प्रभवति" - आन्वीक्षिक्या - प्रमाणों और तर्कों से विवेचित त्रयी- वेद वार्त्ता और दण्डनीति का आदेश कर सकते हैं, कहकर आन्वीक्षिकी का महत्त्व बताया है।[5] विद्याओं के अन्तर्गत 'आन्वीक्षिकीविद्या' का स्थान सर्वोपरि है, अर्थशास्त्रकार स्वयं न्यायशास्त्र की विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं-

"प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।

---

[1] ईशावास्योपनिषद्

[2] मुण्डकोपनिषद्; १।१।४

[3] मनुस्मृति, १२/१०६

[4] पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। - याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, ३

[5] माथुरी पञ्चलक्षणी, बदरीनाथ शुक्ल, भूमिका।

आश्रयः सर्वधर्माणां सेयमान्वीक्षिकी मता।।"[6]

अर्थात् 'आन्वीक्षिकी' समस्त विद्याओं का प्रकाशक, सम्पूर्ण कर्मों का साधक और समग्र धर्मों का आश्रय है। भाष्यकार वात्स्यायनाचार्य ने 'आन्वीक्षिकीविद्या' को 'न्यायविद्या', 'न्यायशास्त्र' एवं 'हेतुविद्या' के नाम से अभिहित किया है-

"प्रत्यक्षागमाश्रितमनुमानं साऽन्वीक्षा, प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा, तया प्रवर्तत इत्यान्वीक्षिकी न्यायविद्या, न्यायशास्त्रम्, यत्पुनरनुमानं प्रत्याक्षागमविरुद्धं न्यायाभासः स इति"[7] ।

न्याय शब्द का अर्थ :-

तत्त्व निर्णयार्थ , पदार्थ निर्धारणार्थ में 'न्याय' विचार अति महत्त्वपूर्ण है। न्याय के बिना पदार्थ का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट होना कठिन है। न्याय के सन्दर्भ में वात्स्यायनाचार्य का कथन है- "प्रमाणैरथपरीक्षणं न्यायः"[8]। अर्थात् प्रमाणों के द्वारा अर्थ की परीक्षा करना ही न्याय कहलाता है। पञ्चावयव वाक्य को 'न्याय' शब्द से प्रतिपादित किया गया है — "पञ्चावयवोपेतवाक्यात्मको न्यायः"[9], तथा वाद, जल्प, वितण्डा विचारों का आदि एवं तत्त्वनिर्णय का आधार स्रोत 'परमन्याय' के रुप में अभिहित है।

"साधनीयार्थस्य यावति शब्दसमूहे सिद्धिः परिसमाप्यते, तस्य पञ्चावयवाः प्रतिज्ञादयः समूहमपेक्ष्यावयवा उच्यन्ते । तेषु प्रमाणसमवायः । आगमाः प्रतिज्ञा, हेतुरनुमानम्, उदाहरणं प्रत्यक्षम्, उपमानमुपमानम्, सर्वेषामेकार्थसमवाये सामर्थ्यप्रदर्शनं निगमनमिति । सोऽयं परमो न्याय इति । एतेन वादजल्पवितण्डाः प्रवर्तन्ते, नातोऽन्यथेति । तदाश्रया च तत्त्वव्यवस्था"[10] । न्यायवार्तिककार ने "समस्तव्यापारप्रमाणादर्थाधिगतिर्न्यायः" ऐसा बोधित किया है।

---

[6] न्यायभाष्य, अध्याय-२

[7] न्यायभाष्य, प्रथमसूत्र।

[8] न्यायभाष्य, प्रथमसूत्र।

[9] न्यायभाष्य, प्रथमसूत्र।

[10] न्यायभाष्य, प्रथमसूत्र।

दीधितिकार ने न्याय लक्षण के विषय में कहा है - "उचितानुपूर्वीकप्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्वं न्यायत्वम्।"[11] 'नियमेन

ईयते इति', 'नि' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' धातु से 'परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः'[12] से निष्पन्न 'न्याय' शब्द का अर्थ 'उचित-अनुचित का विवेक'। 'नीयन्ते प्राप्यन्ते विवक्षितार्थाः अनेन अस्मिन् वा' ऐसा व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ करके 'न्यायशब्द' की निष्पत्ति होती है।

न्यायशास्त्र की विशेषता :-

अक्षपादगौतम ने न्यायसूत्र का प्रणयन किया, जिसमें पाँच अध्याय हैं, इसे पञ्चाध्यायी के नाम से भी जानते हैं, और प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक हैं, प्रथम अध्याय में एकादश प्रकरण तथा ६१ सूत्र, द्वितीय अध्याय में त्रयोदश प्रकरण तथा १३३ सूत्र, तृतीय अध्याय में षोडश प्रकरण तथा ४५ सूत्र, चतुर्थ अध्याय में विशंति प्रकरण तथा ११८ सूत्र, पञ्चम अध्याय में चतुरविशंति प्रकरण तथा ६७ सूत्र हैं। न्यायदर्शन में कुल ५२८ सूत्र निगदित हैं। न्यायदर्शन का प्रथम सूत्र **"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छल-जातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः"** है। न्यायदर्शन में त्रिविधा प्रवृत्ति के रूप में उद्देश, लक्षण और परीक्षा को स्वीकार किया गया है, जिससे षोडश पदार्थों का सम्यक्तया तत्त्वज्ञान प्राप्त हो सके। "उद्देशस्तु नाममात्रेण वस्तुसंकीर्तनम्। तच्चास्मिन्नेव सूत्रे कृतम् । लक्षणन्त्वसाधारणधर्मवचनम्। यथा गोः सास्नादिमत्त्वम् । लक्षितस्य लक्षणमुपपद्यते न वेति विचारः परीक्षा। तेनैते लक्षणपरीक्षे प्रमाणादीनां तत्त्वज्ञानार्थं कर्तव्ये।"[13]। न्यायशास्त्र का अपर

नाम तर्कविद्या भी है। 'तर्क्यन्ते प्रतिपाद्यन्त इति तर्काः षोडशपदार्थाः तेषां स्वरूपप्रतिपादकं तर्कशास्त्रं न्यायशास्त्रमिति।' तर्क के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए न्यायशास्त्रकार गौतम ने तर्कलक्षण के विषय में कहा है - "अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितः तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः"[14] ।

---

[11] गादाधरी अवयवप्रकरणम्, पृ.सं.-२८

[12] पारस्कर सूत्र ३।३।३७

[13] तर्कभाषा, व्याख्याकार गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर, पृ.सं.-४

[14] न्यायसूत्रवृत्ति; १।१।४०

गौतम के अनुसार, तर्क एक प्रकार की ऊहा (विचारणा) है; जो ऐसी वस्तु के तत्त्वज्ञान के लिए के प्रयुक्त होती है; जिसका विशेषस्वरूप अज्ञात है एवं प्रमाणों की सहायता से उसके विषय में विरोधी सम्भानाओं का खण्डन कर उसके यथार्थ स्वरूप का निर्धारण कर लिया जाता है।[15] न्यायशास्त्र की विशिष्टता इससे भी ज्ञात होती है कि न्यायशास्त्र के पढने से बुद्धि विमल तथा सांसार के प्रति मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है -

"मोहं रुणद्धि विमलीकुरुते च बुद्धिं सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिम्।
शास्त्रान्तराभ्यासनयोग्यतया युनक्ति तर्कश्रमो न तनुते किमिहोपकारकम्।।"[16]

याज्ञवल्क्य द्वारा याज्ञवल्क्यस्मृति में न्यायशास्त्र का उल्लेख प्राप्त होता है।[17] वाल्मिकी आन्वीक्षिकी विद्या का संकेत करते हैं-

"धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यामानेषु दुर्बुधाः।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थां प्रवदन्ति ते।।"[18]

व्यासाचार्य ब्रह्मसूत्र के अन्तर्गत कहते हैं - "तर्कप्रतिष्ठापनादपि"[19] । तथा मनुस्मृति में तर्कविद्या के सम्बन्ध में स्पष्ट है -

"आर्षं धर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः।।"[20]

पद्मपुराण में स्पष्ट है कि न्यायदर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं -

"गौतमेन तथा न्यायं सांख्यन्तु कपिलेन वै"[21]

तथा गौतम ऋषि का ही अपर नाम अक्षपाद है; ऐसा भाष्यकार वात्स्यायनाचार्य लिखते हैं -

"योऽक्षपादमृषिं न्यायः प्रत्यगाद् वदतां वरम् ।
तस्य वात्स्यायन इदं भाष्यं जातमवर्त्तयत्।।"[22]

---

[15] न्याय में तर्क की अवधारणा; पृ.सं.-४५

[16] सुभाषितरत्नाभाण्डागारम्, सामान्यप्रकरणम्, नैयायिकप्रशंसा।

[17] पुराणन्यायमीमांसा- याज्ञवल्क्यस्मृति १।३

[18] रामायणम् - २/१००/३९

[19] ब्रह्मसूत्रम् - २/१/११

[20] मनुस्मृतिः - १२/१०६

[21] पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डः, अध्यायः - २६३

वार्तिककार ने भी स्पष्ट किया है -

"यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद ।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतोः करिष्यते तस्य मया निबन्धः।।"[23]

इसी क्रम में न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकाकार स्वग्रन्थ में लिखते हैं -

"अथ भगवता अक्षपादेन निःश्रेयसहेतौ शास्त्रे प्रणीते।"[24]

न्यायमञ्जरीकार जयन्तभट्ट ने कहा है -

"अक्षपादप्रणीतो विततो न्यायपादपः।
सान्द्रामृतरसस्पन्दफलसन्दर्भनिर्भरः।।"[25]

सुभाषितरत्नभण्डागार के न्यायप्रशंसा में लिखा है -

"अद्भुतस्तर्कपाथोधिरगाधो यस्य वर्धकः।
अक्षपादोऽतमःस्पष्टस्त्वकलङ्कः कलानिधिः।।
अपरीक्षितलक्षणप्रमाणैरपरामृष्टपदार्थसार्थतत्त्वैः।।"[26]

न्यायशास्त्र का प्रयोजन :-

'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' अर्थात् निष्फल कार्य में कोई भी मनुष्य प्रवृत्त नहीं होता है। प्रयोजन ज्ञान के द्वारा ही अध्येता की ग्रन्थाध्ययन में प्रवृत्ति होती है। 'मत्वा कर्माणि सिव्यतीति' निरुक्तकार के इस निर्वचन के अनुसार - मनुष्य बिना चिन्तन के किसी भी कार्य को नहीं करता है। 'इदं मदिष्टसाधनम्' , 'इदं मत्कृतिसाध्यम्' वाक्यज्ञान द्वारा ही मनुष्य कार्य करने में प्रवृत्त होता है। 'इष्ट' पद से प्रयोजन ज्ञान सिद्ध होता है। भाट्टपाद ने प्रयोजन के विषय में कहा है -

"सिद्धार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते।

---

[22] न्यायभाष्यम् , पञ्चम अध्यायः

[23] न्यायवार्तिकम् - १

[24] न्यायतात्पर्यटीका मङ्गलश्लोक

[25] न्यायमञ्जरी प्रथमपरिच्छेद

[26] सुभाषितरत्नाभाण्डागारम्, सामान्यप्रकरणम्, नैयायिकप्रशंसा।

शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः समबन्धः सप्रयोजनः।।"[27]

अक्षपादगौतम द्वारा विरचित 'न्यायशास्त्रम्' ग्रन्थ का प्रयोजन 'निःश्रेयस-मोक्ष' माना गया है, तथा प्रमाण, प्रमेय, संशयादि षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है। "प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छल-जातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः"[28]। न्यायशास्त्र के अध्ययन से पदार्थों का सम्यक्तया तत्त्वज्ञान तथा पुनः आत्मतत्त्व के साक्षात्कार द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। क्रमशः विवेचना इस प्रकार से है - तत्त्वसाक्षात्कार से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति; मिथ्याज्ञान की निवृत्ति से राग, द्वेष, मोहरूप दोषों की निवृत्ति; दोषों की निवृत्ति से धर्म एवं अधर्मरूप प्रवृत्ति की निवृत्ति; प्रवृत्ति की निवृत्ति से पुनर्जन्म को निवृत्ति और पुनर्जन्म की निवृत्ति से समस्त दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्तिरूप अपवर्ग-निःश्रेयस-मोक्ष की प्राप्ति।[29] सूत्रद्वारा इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है - 'दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्गः'[30]।

आचार्यगङ्गेशोपाध्याय ने प्रामाण्यवाद के प्रथमविप्रतिपत्ति में कहा है —

"अथ जगदेव दुःखपङ्कनिमग्नमुद्दिधीर्षुरष्टादशविद्यास्थानेष्वभ्यर्हितमामान्वीक्षिकीं परमकारुणिको मुनिः प्रणिनाय"।[31]

न्यायशास्त्र के भेद :-

भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत दर्शनशास्त्र का स्थान सर्वोपरि है। दर्शनों में न्यायशास्त्र शिरोमणि समान मूर्धन्य है। भेद दृष्टि से न्यायशास्त्र दो भागों में विभक्त है; वैदिक न्याय और अवैदिक न्याय। वैदिक न्याय के अन्तर्गत गौतमीय न्याय, काणाद न्याय, कापिल न्याय, पातञ्जल न्याय, जैमिनीय न्याय, और वैयासिक न्याय पुष्पित है। पूर्वोक्त न्यायों में गौतमीय न्याय अपने विषय, भाषा, शैली, पदार्थ, विचार एवं गाम्भीर्य के कारण 'न्यायशास्त्र' प्रतिष्ठत स्थान को प्राप्त होता है। अवैदिक न्याय भी द्विधा भेद वाला है - प्रथम - बौद्धन्याय एवं

---

[27] मीमांसाश्लोकवार्तिक, १।१७

[28] गौतमन्यायसूत्र, १।१।१।

[29] तर्कभाषा, व्याख्याकार बदरीनाथशुक्ल, भूमिका, पृ.सं.-५

[30] न्यायदर्शन, १।१।२।

[31] प्रामाण्यवाद, तत्त्वचिन्तामणि, पृ.सं.-७

द्वितीय - जैनन्याय। पुनः न्यायशास्त्र दो धाराओं में विभक्त है - प्रमेय प्रधान और प्रमाण प्रधान । सूत्रकार स्वंय कहते हैं - "प्रमाणप्रमेयेत्यादितत्त्वज्ञानानिःश्रेयसाधिगमः"।[32]

सूत्रतः प्रमाण, प्रमेय इत्यादि पदार्थों का तत्त्व ज्ञात होने पर निःश्रेयस की सिद्धि होती है। अतः प्रमेयपदार्थ, प्रमाणपदार्थ दोनों ही मोक्ष प्राप्ति में प्रधान हैं। जिस शास्त्र में प्रमेय पदार्थ का प्रधानत्वेन प्रतिपादन हो वह प्रमेय शास्त्र एवं प्रमाण पदार्थ का प्रधानत्वेन प्रतिपादन होने से प्रमाण शास्त्र कहलाता है। गौतम से गङ्गेशोपाध्याय के पूर्व तक के न्यायविद् आचार्यों की कृतियाँ प्रमेयप्रधान हैं और गङ्गेशोपाध्याय की तत्त्वचिन्तामणि तथा उस पर आधारित परवर्ती विद्वानों की समग्र कृतियाँ प्रमाणप्रधान हैं। प्रमेयप्रधानशास्त्र को प्राचीनन्याय तथा प्रमाणप्रधानशास्त्र को नव्यन्याय से अभिहित किया गया है।

प्रचीनन्याय और नव्यन्याय के मध्य प्रधानतया भाषा, शैली और परिष्कार दृष्ट्या भेद दृष्टिगोचर होते हैं। जहाँ प्राचीनन्याय की भाषा तथा शैली प्रायशः सरल, सदृढ, संक्षिप्त और सांकेतिक प्राप्य है, वहीं नव्यन्याय के ग्रन्थों में प्रकारता, विशेष्यता, संसर्गता, प्रतियोगिता, अनुयोगिता, अवच्छेदकता, अवच्छेद्यता, निरूप्यता, निरूपकता जैसे क्लिष्ट शब्दों का अधिकाधिक रुप में प्रयोग मिलता है । प्राचीन न्याय के ग्रन्थों में पदार्थ निरूपण स्थूलतः तथा नव्य के ग्रन्थों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्ट्या विवेचन किया जाता है। नव्य परम्परा में प्रमाण का मुख्यत्वेन विचार होने से न्यायशास्त्र 'प्रमाणशास्त्र' के रुप में व्यवहृत होने लगा।

न्यायशास्त्रीय आचार्यों की परम्परा :-

प्राचीनन्यायपरम्परा :-

आचार्यनाम	**कृति**
गौतम	न्यायसूत्रम्
वात्स्यायन	न्यायभाष्यम्
उद्योतकर	न्यायवार्तिकम्
वाचस्पतिमिश्र	न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका
उदयनाचार्य	न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकापरिशुद्धिः
	न्यायनिबन्धः
	न्यायकुसुमाञ्जलिः
	आत्मविवेकः
	किरणावली

[32] न्यायसूत्र; १/१/१

	लक्षणावली
भासर्वज्ञ	न्यायसारः
	न्यायभूषणः
शिवादित्य	सप्तपदार्थी
केशवमिश्र	तर्कभाषा
शशधर	न्यायसिद्धान्तप्रदीपः

नव्यन्यायपरम्परा :—

आचार्यनाम	**कृति**
गङ्गेशोपाध्याय	तत्त्वचिन्तामणिः
वर्धमानोपाध्याय	तत्त्वचिन्तामणिप्रकाशः
	न्यायतात्पर्यटीकापरिशुद्धिप्रकाशः
	न्यायपरिशिष्टप्रकाशः
	प्रमेयनिबन्धप्रकाशः
मथुरानाथतर्कवागीश	तत्त्वचिन्तामणिरहस्यम्
	तत्त्वचिन्तामण्यालोकरहस्यम्
	दीधितिरहस्यम्
	किरणावलीप्रकाशरहस्यम्
	न्यायलीलावतीप्रकाशदीधितिरहस्यम्
	आत्मतत्त्वविवेकरहस्यम्
	आदिक्रियाविवेकः
	न्यायसिद्धान्तरहस्यम्
	आयुर्वेदभावना
गोकुलनाथोपाध्याय	तत्त्वचिन्तामणिचक्ररश्मिव्याख्या
	तत्त्वचिन्तामणिदीधितिविद्योतम्
	कादम्बरीप्रदीपव्याख्या
	दिक्कालनिरूपणम्
	कुसुमाञ्जलिटिप्पणम्
	लाघवगौरवरस्यम्
	मिथ्यात्वनिरूपणम्
	शक्तिवादः
	पदवाक्यरत्नाकरः
	न्यायसिद्धान्ततत्त्वम्

जगदीशतर्कालङ्कार	तत्त्वचिन्तामणिमयूखः
	तत्त्वचिन्तामणिदीधितिप्रकाशिका
	शब्दशक्तिप्रकाशिका
	न्यायलीलावतीदीधितिव्याख्या
	न्यायदर्शः
	न्यायसारावली
	तर्कामृतम्
	पदार्थतत्त्वनिर्णयः
	भावविलासभ्रमरदूतम्
गदाधरभट्टाचार्य	तत्त्वचिन्तामणिदीधितिप्रकाशिका
	तत्त्वचिन्तामण्यालोकटीका
	तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या
	मुक्तावली
	नञ्वादटीका
	शब्दप्रामाण्यवादरहस्यम्
	रत्नकोषवादरहस्यम्
	प्रामाण्यवाददीधितिटीका
	आख्यातवादः
	कारकवादः
	बुद्धिवादः
	मुक्तिवादः
	विधिवादः
	विषयतावादः
	व्युत्पत्तिवादः
	शक्तिवादः
	स्मृतिसंस्कारवादः
धर्मदत्त (बच्चा झा)	गूढार्थतत्त्वालोकः
	न्यायभाष्यतात्पर्यटीकाटिप्पणी
	कुसुमाञ्जलिप्रकाशटिप्पणी
	जागदीशीव्याप्तिपञ्चकम्
	शक्तिवादटिप्पणी
वरदराज	तार्किकरक्षा
रामभद्रसिद्धान्तवागीश	सुबोधिनी

रघुदेवन्यायलङ्कारभट्टाचार्य	तत्त्वचिन्तामणिगूढार्थदीपिका
नृसिंहपञ्चाननभट्टाचार्य	न्यायसिद्धान्तमञ्जरीभूषा
रूद्रन्यायवाचस्पति	तत्त्वचिन्तामणिदीधितिपरीक्षा
	किरणावलीप्रकाशवृत्तिपरीक्षा
	पदार्थखण्डनव्याख्या
वासुदेवमिश्र	तत्त्वचिन्तामणिटीका
भगीरथ (मेधाठक्कर)	कुसुमाञ्जलिप्रकाशिका
	लीलावतीप्रकाशव्याख्या
	किरणावलीप्रकाशप्रकाशिका
महेशठक्कर	दर्पणम्
मधुसुदनठक्कर	तत्त्वचिन्तामण्यालोककण्टकोद्धार
दुर्गादत्तमिश्र	न्यायबोधिनी
वासुदेवसार्वभौम	सार्वभौमनिरुक्तिः
जानकीनाथशर्मा	न्यायसिद्धान्तमञ्जरी
गोविन्दन्यायवागीश	न्यायसङ्क्षेपः
	पदार्थखण्डव्याख्या
जयन्तभट्टाचार्य	न्यायमञ्जरी
	न्यायकलिका
लौगाक्षिभास्कर	तर्ककौमुदी
अन्नंभट्ट	तर्कसङ्ग्रहः
	तर्कदीपिका
शङ्करमिश्र	कणादरहस्यम्
	वैशेषिकोपस्कारटीका
	भेदरत्नः
	तत्त्वचिन्तामणिमयूखः
	त्रिसूत्रीनिबन्धव्याख्या
	आत्मतत्त्वविवेककल्पलता
	न्यायकुसुमाञ्जल्यामोदः
	किरणावलीनिरुक्तिप्रकाशः
	न्यायलीलावतीकण्ठाभरणम्
	खण्डनखण्डखाद्यशाङ्करी
विश्वनाथतर्कपञ्चानन	कारिकावली (भाषा परिच्छेदः)
	न्यायसिद्धान्तमुक्तावली

	नञ्वादः
	तर्कसङ्ग्रहटीका
	न्यायसूत्रवृत्तिः
	न्यायतत्त्वप्रबोधिनी
	पदार्थतत्त्वलोकः
हरिरामतर्कवागीश	तत्त्वचिन्तामणिटीकाविचारः
	आचार्यमतरहस्यविचारः
	स्वप्रकाशरहस्यविचारः
	रत्नकोषविचारः
	आत्मतत्त्वविवेकप्रकाशः
	किरणावलीप्रकाशः
	न्यायलीलावतीप्रकाशः
	न्यायकुसुमाञ्जलीप्रकाशः
	तर्कभाषाप्रकाशः
	खण्डनखण्डखाद्यप्रकाशः
	खण्डनोद्धारः
	अन्वीक्षानयतत्त्वबोधः
वल्लभाचार्य	न्यायलीलावती
पक्षधर जयदेवमिश्र	तत्त्वचिन्तामण्यालोकः
	चन्द्रालोकः
	द्रव्यपदार्थः
	लीलावती
रघुनाथशिरोमणि	तत्त्वचिन्तामणिदीधितिः
	आत्मतत्त्वविवेकदीधितिः
	किरणावलीप्रकाशदीधितिः
	किरणावलीप्रकाशदीधितिः
	लीलावतीप्रकाशदीधितिः
	प्रत्यक्षणिदीधितिः
	शब्दमणिदीधितिः
	खण्डनखण्डखाद्यदीधितिः
	अवच्छेदकत्वनिरुक्तिः
	नञ्वादः
	आख्यातवादः
	पदार्थतत्त्वनिरुपणम्

तत्त्वचिन्तामणि का स्थान :-

नव्यन्याय के प्रवर्तक आचार्यगङ्गेशोपाध्याय द्वारा विरचित आद्य कृति तत्त्वचिन्तामणि नव्य परम्परा का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। गङ्गेशोपाध्याय (११७५) मिथिला (बिहार) के मूल निवासी थे। इनके पुत्र वर्धमानोपाध्याय ने चिन्तामणि पर 'प्रकाश' टीका पाण्डित्य पूर्ण शैली में लिखा। पुनः तत्त्वचिन्तामणि पर टीकाओं का विस्तार अतिशीघ्रता से होने लगा। स्वंय ग्रन्थकार चिन्तामणि के विषय में लिखते हैं -

"यतो मणेः पण्डितमण्डनक्रिया प्रचण्डपाषण्डतमस्तिरक्रिया ।
विपक्षपक्षे न विचारचातुरी न च स्वसिद्धान्तवचोदरिद्रता।।"

तत्त्वचिन्तामणि का अपर नाम 'प्रमाणचिन्तामणि' है जो चार खण्डों में विभक्त है; प्रत्यक्षखण्ड, अनुमानखण्ड, उपमानखण्ड और शब्दखण्ड। न्यायशास्त्र के अन्तर्गत चिन्तामणि अध्ययन-अध्यापन, तथा चिन्तन-मनन का प्रमुख ग्रन्थ बन गया है। नैयायिकमुकुट 'रघुनाथ शिरोमणि' की 'दीधिति', 'मथुरानाथ तर्कवागीश' का 'रहस्य', 'जगदीश तर्कालङ्कार' की 'जागदीशी' तथा 'गदाधर भट्टाचार्य' की 'गादाधरी' इन आचार्यों की टीका-उपटीकाओं ने इस ग्रन्थ को अद्‌भुत विद्या का स्रोत बना दिया है। तथा नवीन प्रामाणिक सिद्धान्तों की प्रतिष्ठापना की पटुता के कारण ही ये 'सिद्धान्तदीक्षागुरु' कहे जाते थे, जैसा कि स्वंय इन्होंने ग्रन्थ के आरम्भ में अपने विषय में अधस्तन पद्य में कहा है -

"अन्वीक्षानयमाकलय्य गुरुभिर्ज्ञात्वा गुरूणां मतम् ।
चिन्तादिव्यविलोचनेन च तयोः सारं विलोक्याखिलम् ।।
तन्त्रे दोषगणेन दर्गमतरे 'सिद्धन्तदीक्षागुरु'
गङ्गेशस्तनुते मितेन वचसा श्रीतत्त्वचिन्तामणिम्।।
'पुत्रे यशसि तोये च त्रिभिर्भाग्यपरीक्षणम्'

मथुरानाथ का परिचय :-

नव्यनैयायिक मथुरानाथ नवद्वीप के प्रतिष्ठत आचार्य थे। इन्होंने तत्त्वचिन्ताणि पर 'रहस्य' नामक टीका लिखी, जो विद्वत्समाज में अप्रतिम है। तथा इनकी अन्तिम टीक माथुरानाथी के नाम से प्रसिद्ध है। अद्‌भुत वैदुष्य के कारण इन्हें पण्डित समाज ने 'तर्कवागीश' की उपाधि से अलङ्कृत किया है।

मथुरानाथकृति में पञ्चलक्षणी की विशेषता :-

दीधितिकार का परिचय :-

वासुदेव सार्वभौम आचार्य के शिष्यों में रघुनाथ भट्टाचार्य जो कि अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इन्होंने तत्त्वचिन्तामणि पर 'तत्त्वदीधिति' टीका लिखी जो कालान्तर में स्वतन्त्र ग्रन्थ बन गई तथा जिस पर ही टीका लिखना पाण्डित्य माना गया। इन्होंने अपनी अद्‌भुत तर्कशक्ति प्रतिभा द्वारा अनेक पूर्व पुरातन सिद्धन्तों का युक्ति पूर्वक खण्डन कर नूतन सिद्धान्तों को स्थापित किया। इनके विषय में लिखित है -

"विदुषां निवहैरिहैकमत्याद् यददुष्टं निरटङ्कि यच्च दुष्टम् ।
मयि जल्पति कल्पनाधिनाथे रघुनाथे मनुतां तदन्यथैव।।"

जागदीशी की विशेषता :-

जगदीशतर्कालङ्कार न्यायशास्त्र के उच्चकोटि के न्याय मर्मज्ञों में प्रतिष्ठित थे। इन्होंने तत्त्वचिन्तामणि पर साक्षात् रूप से टीका न लिखकर अपने से पूर्व विरचित आचार्य रघुनाथशिरोमणि द्वारा 'दीधिति' पर विस्तृत टीका लिखी है जो 'जागदीशी' नाम से प्रसिद्ध है। इनके मौलिक ग्रन्थ 'पदार्थतत्त्वनिर्णयः', 'शब्दशक्तिप्रकाशिका' इत्यादि हैं । इनके सम्बन्ध में विद्वानों की उक्ति है - 'जगदीशस्य सर्वस्वं शब्दशक्तिप्रकाशिका'। शब्दशक्तिपर इनके वैदुष्यपूर्ण विचार द्रष्टव्य होते हैं।

गदाधरभट्टाचार्य का परिचय :-

गदाधर भट्टाचार्य नव्यन्यायशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य हैं, इन्होंने रघुनाथशिरोमणि के 'दीधिति' टीका पर अत्यन्त विस्तृत और परिष्कृत टीकाग्रन्थ की रचना की है जो 'गादाधरी' के नाम से विख्यात है। इनके मौलिक ग्रन्थों में शक्तिवाद और व्युत्पत्तिवाद दोनों अद्‌भुत ग्रन्थ हैं।

कालीशङ्कर की विशेषता :-

श्रीकालीशङ्करसिद्धन्तवागीश का जन्म बङ्गदेशस्थढाकामण्डल के अन्तर्गत ब्रजयोगिनि ग्राम के पद्मानदी तट पर हुआ था। कालीशङ्कर वर्ष १९७१ में

वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतविद्यामन्दिर में न्यायपद को अलङ्कृत कर रहे श्रीचन्द्रनारायणन्यायपञ्चानन के घर में पाचक का कार्य करते थे। पाचक का कार्य करते हुये बिना अध्यापन के अर्थात् श्रवणमात्र द्वारा ही कतिपय वर्षों में ही अनेक न्याय ग्रन्थों को इन्होंने कालीशङ्कर ने अभ्यस्त कर लिया। तत्पश्चात् इनकी अभ्यास पटुता तथा मेधावित्व को देखकर श्रीचन्द्रनारायणन्यायपञ्चानन ने गुरु परम्परा पूर्वक इनको अध्ययन कराया। न्याय पठन हेतु स्वदेश जाने के लिये इनको आदेश भी दिया। जहाँ स्वदेश में उन्होंने अध्ययन-अध्यापन का कार्य करते हुये अनेकों क्रोडपत्रों की रचना की। इसीलिए सभी श्रीकालीशङ्कर कृत क्रोडपत्रों को श्रीचन्द्रनारायणकृत क्रोडपत्रों का विस्तृत रूप ही विद्वत्जन स्वीकार करते हैं।

वाराणसीस्थराजकीयसंस्कृतपाठशाला में श्रीचन्द्रनारायणन्यायपञ्चानन के अनन्तर उनके कनिष्ठ पुत्र कृष्णचरणतर्कालङ्कार के पढाने के अनन्तर श्रीकालीशङ्कर ने उसी संस्कृतपाठशाला में अध्यापन का कार्य किया, तत्पश्चात् १८८० ईस्वी में उनका (कालीशङ्कर) का स्वर्गवास हो गया। इनका परिचय इतना मात्र ही प्राप्त होता है।

प्रथम अध्याय
व्याप्ति का प्रथमलक्षण

न्यायदर्शन के अनुसार प्रमाणस्वरूप :-

धर्म-अर्थ-काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय में 'मोक्ष' सर्वश्रेष्ठ है। सभी दर्शनों का लक्ष्य भी मोक्ष प्राप्ति ही है। मोक्ष तत्त्वज्ञान के आत्मसाक्षात्कार द्वारा ही सम्भव है। संसार में विद्यमान समस्त प्रमेय पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्रमाण के अन्तर्गत ही निहित है - "मानाधीनामेयसिद्धिर्मानसिद्धिश्च लक्षणात्।"[33] समस्त पदार्थों के अन्तर्गत आत्मा परम प्रमेय के रुप में स्वीकार किया गया है,

वेद कहता है -

"आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।"[34]

वैशेषिकसूत्रकार भी स्पष्ट कहते हैं कि पदार्थ तत्त्वज्ञान के द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है -

"धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसम्।"[35]

इसी क्रम में न्यायसूत्रकार भी स्पष्ट लिखते हैं कि प्रमाणादि पदार्थों के तत्त्वज्ञान से ही निःश्रेयस की प्राप्ति होती है -

"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छल-जातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।"[36]

अब जिज्ञासा होती है की पदार्थ क्या है? पदार्थ किसे कहते हैं? इस जिज्ञासा के सन्दर्भ में लिखा गया है - "पदजन्यप्रतीतिविषयत्वं पदार्थत्वम्।"[37] चूँकि तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः तत्त्व के बारे में स्पष्ट है कि "तत्त्वस्य ज्ञानं तत्त्वज्ञानम्" यहाँ कर्मषष्ठी हुई है। वार्तिकार

---

[33] जैन न्याय, १/२

[34] बृहदारण्यकोपनिषद्, ४/५

[35] वैशेषिक सूत्र, १।१।४

[36] न्यायसूत्र, १/१/१

[37] शब्दशक्तिप्रकाशिका

तत्त्व लक्षण के जिज्ञासा में लिखते हैं - "तत्त्वं पदार्थानां यथावस्थितात्मप्रत्ययोत्पत्तिनिमित्त्वं यो यथावस्थितिः पदार्थः सः तथाभूतप्रत्ययोत्पत्तिनिमित्तं भवति यत्तत्तत्त्वम्।"[38] मोक्ष सम्पादनार्थ अक्षपादगौतम ने न्यायसूत्रों को निर्मित किया है। 'मानाधीना मेयसिद्धिः' इस वचन के अनुसार प्रमाण के अनन्तर प्रमेय की सिद्धि असम्भव है। इस निमितार्थ न्यायसूत्र में प्रथम प्रमाण का निर्देश किया गया है। तत्पश्चात् षोडश पदार्थों का लक्षण एवं परीक्षा अभिस्वीकृत है। सर्वप्रथम प्रमाण लक्षण के विषय में कहा जाता है - "प्रमाकरणं प्रमाणम्"[39] अर्थात् 'प्रमा' का करण 'प्रमाण' है। इस लक्षण में प्रमाण लक्ष्य तथा प्रमा लक्षण है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'मा' धातु से 'करण' अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर 'प्रमाण' शब्द की निष्पत्ति होती है। 'प्रमीयते ज्ञायते येन तत् प्रमाणम्' ऐसा करणव्युत्पत्तिलभ्यर्थ का ज्ञान होता है। भाष्यकार वात्स्यायन ने कहा है कि प्रमाण शब्द की शाब्दिक व्याख्या से ही प्रमाण का लक्षण अवगत हो जाता है अतः उसके पृथक् लक्षण की आवश्यकता न समझकर सूत्रकार ने उसका लक्षण नहीं किया है । इस बात को भाष्यकार ने इन शब्दों में कहा है - 'उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानि समाख्यनिर्वचनसामर्थ्याद् बोद्धव्यम् । प्रमीयतेऽनेनेति करणार्थाभिधानो हि प्रमाणशब्दः'।[40] आचार्य लोग करणव्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही करते हैं, भावव्युत्पत्ति करने पर 'प्रमितिः प्रमाणम्' अर्थात् प्रमिति ही प्रमाण है, ऐसा अर्थ जो उचित नहीं है, क्योंकि अप्रमितिरूप चक्षुरादि भी प्रमिति के कोटि में कहे जायेंगे जो कि ठीक नहीं है। अतः भावव्युत्पत्ति करना समीचीन नहीं है। अब जिज्ञासा होती है कि जब प्रमा का करण प्रमाण है तब उसका फल क्या है? क्योंकि करण का फल अवश्य ही होता है । तब इस शङ्का के उत्तर में कहा है कि 'प्रमैव फलं, साध्यमित्यर्थः। यथा छिदाकरणस्य परशोश्छिदैव फलम्'। अर्थात् जब 'प्रमा' का करण अथवा साधन 'प्रमाण' है, तो उस प्रमाण का फल 'प्रमा' ही होगी। जैसे छेदन (काटने) के 'करण' (साधन) परशु का फल (साध्य) 'छेदन' ही होता है। तथैव प्रस्तुत में 'प्रमा' के करणभूत 'प्रमाण' का फल 'प्रमा' ही है। अर्थात् 'प्रमाण' साधन है, और 'प्रमा' उसकी साध्य है।[41] पुनः प्रमाण लक्षण के घटक में 'प्रमा' शब्द क्या है इसकी जिज्ञासा होती है तब इसके उत्तर में कहा

---

[38] न्यायवार्तिक, पृ.११

[39] तर्कभाषाकर केशवमिश्र, पृ.१२

[40] न्या. भा. १/१/३

[41] तर्कभाषा

गया है - "यथार्थानुभवः प्रमा" अर्थात् यथार्थ अनुभव का नाम 'प्रमा' है । पुनः यथार्थ क्या है? तब कहा गया है - "तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवः यथार्थः। यथा 'अयं घटः' इति ज्ञानम्। सैव प्रमा उच्यते"[42] अर्थात् जो वस्तु जैसी है, उसका वैसा ही अनुभव होना यथार्थ कहलाता है; वही प्रमा भी है। 'यथार्थ इत्ययथार्थानां संशय-विपर्ययतर्कज्ञानानां निरासः'। यथार्थ अर्थात् संशय-विपर्यय-तर्क ज्ञान का निराकरण। अतः जो स्मति ज्ञान से भिन्न, संशय-विपर्यय-तर्क ज्ञान से भिन्न यथार्थ अनुभव ज्ञान ही प्रमा कहलाता है। यथार्थ अनुभव चार प्रकार का है - 'यथार्थानुभवश्चतुर्विधः - प्रत्यक्षाऽनुमित्युपमितिशाब्दभेदात्।" [43] अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्द भेद से चार प्रकार के यथार्थ अनुभव बताया गये हैं। वात्स्यायन लिखते हैं - जिस साधन के द्वारा प्रमाता प्रमेय का ज्ञान करता है वही प्रमाण है। 'प्रमाता येन अर्थं प्रमेणेति तत्प्रमाणम्'।[44]

मत विशेष :-

यद्यपि न्यायसूत्र में महर्षि गौतम द्वारा स्पष्ट रूप से प्रमाण का लक्षण प्रतिपादित नहीं किया गया अपितु अन्य दार्शनिककारों द्वारा प्रमाण का लक्षण क्रमशः उपस्थापित किया जा रहा है;

बौद्धमत :-

सौत्रान्तिक और वैभाषिक बौद्ध के मत में - 'येन वस्तुनः सम्यग् ज्ञानं भवति तत्प्रमाणम्'। नागार्जुन शन्यवादी होने के कारण वे सत्ताविषयक पदार्थ को स्वीकार नहीं करते हैं। विज्ञानवादी आचार्य दिङ्नाग कहते हैं - 'अर्थनिश्चायकस्वसंवित्तिः प्रमाणम्, सा च विषयाकारिका'[45]। धर्मकीर्ति न्यायबिन्दु ग्रन्थ में लिखते हैं - "सम्यगेव ज्ञानमेव प्रमाणम्"।[46] नैयायिक बौद्धमत का खण्डन करते हैं; प्रमा से भिन्न प्रमाण है। जैन परम्परा के मत में भी प्रमाण का लक्षण भिन्न-भिन्न स्वीकार किया गया है।

यहाँ अन्य दर्शनों के अनुसार प्रमाण का परिगणन किया है; -

---

[42] तर्कसंग्रह

[43] तर्कसंग्रह

[44] न्यायभाष्य १।१।१ ।

[45] स्वसंवित्तिः फलं चात्रतद्रूपादर्थनिश्चयः।
विषयाकार एवास्य प्रमाणं तेन मीयते।। प्र. सं. १/१०

[46] अविसंवादकं ज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्, अनधिगतविषयं प्रमाणम्। न्या. बि. पृ. ४

प्रमाण-भेद :-

भारतीय दार्शनिकों के मध्य प्रमाण भेद को लेकर वैमत्य देखा गया है। जहाँ चार्वाक केवल मात्र प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार करता है वहीं पौराणिक आठ तथा तान्त्रिक चेष्टा के साथ नव प्रमाण को स्वीकार करते हैं। विभिन्न दर्शनों के अनुसार प्रमाण संख्या विषयक स्वरूप इस प्रकार से प्रदर्शित है-

चार्वाक :- प्रत्यक्ष

बौद्ध एवं वैशेषिक :- प्रत्यक्ष- अनुमान

सांख्य एवं योगमत :-प्रत्यक्ष- अनुमान- उपमान

नैयायिकैकदेशि :- प्रत्यक्ष- अनुमान- उपमान

नैयायिक :- प्रत्यक्ष- अनुमान- उपमान- शब्द

मीमांसक (प्रभाकर) :- प्रत्यक्ष-अनुमान- उपमान- शब्द- अर्थापत्ति

मीमांसक (भाट्ट) एवं वेदान्ती :- प्रत्यक्ष- अनुमान- उपमान- शब्द- अर्थापत्ति- अनुपलब्धि

पौराणिक :- प्रत्यक्ष- अनुमान- उपमान- शब्द- अर्थापत्ति- अनुपलब्धि- सम्भव- ऐतिह्य

तान्त्रिक :- प्रत्यक्ष- अनुमान- उपमान- शब्द- अर्थापत्ति- अनुपलब्धि- सम्भव- ऐतिह्य- चेष्टा

न्यायशास्त्र प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द दृष्ट्या चार प्रमाण स्वीकार करता है- 'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि'।[47] जैनमत के अनुसार प्रत्यक्ष और परोक्ष द्विविध प्रमाण माने गये हैं। व्याकरण मत के अनुसार एकादश प्रमाण स्वीकार किये गये हैं, प्रत्यक्ष के एक ही भेद तथा परोक्ष के दश भेद स्वीकार्य हैं, - अनुमान, शब्द, अर्थापत्ति, अभ्यास, अदृष्ट, प्रतिभा, उपमान, अनुपलब्धि, प्रत्यभिज्ञा, तथा कोश। भासर्वज्ञ को छोडकर सभी नैयायिक चार ही प्रमाण स्वीकार करते हैं; अब इन प्रमाणों का सम्यक्तया सविस्तार प्रतिपादन किया जायेगा।

प्रत्यक्ष स्वरूप :-

'अक्षं अक्षं प्रति वर्तते' इति 'प्रत्यक्षम्'। किसी विषय का इन्द्रियों के साथ संयोग होने से जो साक्षात् ज्ञान प्राप्त होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। पदार्थ का साक्षात्कार कराने वाली प्रमा के

---

[47] न्यायसूत्र १।१।३

करण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं; 'साक्षात्कारिप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्'।[48] साक्षात्कारिणी प्रमा वह है जो इन्द्रिय से जन्य होती है। महर्षि गौतम न्यायसूत्र में प्रत्यक्ष के परिभाषा में कहा है — "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्"।[49] अव्यपदेश्य अर्थात् जिसे शब्दों द्वारा प्रकट न किया जा सके, अव्यभिचारि अर्थात् जो भ्रम, संशय और विपर्यय ज्ञान से रहित हो, व्यवसायात्मक अर्थात् निश्चयात्मक ज्ञान जो इन्द्रिय सन्निकर्ष से जन्य हो उसे ही प्रत्यक्ष कहते हैं। तर्कसंग्रहकार लिखते हैं- " इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं प्रत्यक्षम्"।[50] प्रशस्तपादाचार्य प्रत्यक्ष के विषय में कहते हैं - "अक्षमक्षं प्रतीत्योत्पद्यते इति प्रत्यक्षम्"।[51] अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। गङ्गेशोपाध्याय प्रत्यक्ष के निरूपण में कहते हैं - " प्रत्यक्षस्य साक्षात्कारित्वं लक्षणम्"।[52] गङ्गेशोपाध्याय की दृष्टि में साक्षात्कारि ज्ञान और ज्ञानान्तर को कारण न रखने वाले ज्ञान को प्रत्यक्ष माना गया है - 'ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्'। प्रत्यक्ष प्रमाण के लक्षण में तीन मुख्य घटक पद हैं - १. इन्द्रिय २. अर्थ ३. सन्निकर्ष। इन्द्रिय पद से पञ्च ज्ञानेन्द्रिय चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक् का तथा मन का ग्रहण करते हैं। इन्हीं के द्वारा चाक्षुष् प्रत्यक्ष, घ्राणज प्रत्यक्ष, रासन प्रत्यक्ष, स्पार्शन प्रत्यक्ष, श्रावण प्रत्यक्ष होता है। अर्थ पद से समस्त षोडश पदार्थ का ग्रहण एवं सन्निकर्ष पद से षड्विध सन्निकर्ष का बोध होता है। प्रत्यक्षप्रमा का हेतु जो इन्द्रिय ज्ञान है उसका विषयों के साथ छः प्रकार से संयोग होता है वही संयोग षड्विध सन्निकर्ष कहलाता है। नैयायिक इन्द्रियार्थसंयोगरुप सन्निकर्ष के षड्भेद स्वीकार करते हैं। वे सन्निकर्ष हैं - संयोग, संयुक्त, संयुक्तसमवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय, विशेषणविशेष्यभावसन्निकर्ष। प्रत्यक्षज्ञान की उत्पत्ति में आत्मा का मन के साथ संयोग होता है, मन का इन्द्रिय के साथ संयोग तथा इन्द्रिय का अर्थ के साथ संयोग होने पर वस्तु का साक्षात्कार होता है। प्रत्यक्ष भेद को लेकर आचार्य निर्विकल्पक प्रत्यक्ष तथा सविकल्पक प्रत्यक्ष के रुप में दो भेद स्वीकार करते हैं।

---

[48] तर्कभाषा

[49] न्यायसूत्र १/१/४ ।

[50] तर्कसंग्रह

[51] प्रशस्तपादभाष्य

[52] तत्त्वचिन्तामणि

निर्विकल्पक प्रत्यक्ष :-

जहाँ किसी वस्तु का केवल स्वरूप प्रतीत होता है, उसके नाम, जाति, आदि की प्रतीति नहीं होती है, उसे 'निर्विकल्पकज्ञान' कहते हैं।[53] तर्कसंग्रहकार लिखते हैं -"निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्।"[54]

सविकल्पक प्रत्यक्ष :-

जहाँ किसी वस्तु का नाम, जाति, विशेष्य-विशेषण सम्बन्ध की सम्यक्तया प्रतीति होती है, उसे 'सविकल्पकज्ञान' कहते हैं।[55] अन्नंभट्ट कहते हैं - "सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम्"।[56]

नवीन नैयायिक लौकिक-अलौकिक भेद से प्रत्यक्ष दो प्रकार का स्वीकार करते हैं। उपरलिखित प्रत्यक्ष के दो भेद निर्विकल्पक और सविकल्पक लौकिक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत स्वीकार किये जाते हैं। तथा अलौकिक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत इन्द्रिय और अर्थ के मध्य अलौकिक सन्निकर्ष होता है। गङ्गेशोपाध्याय अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद स्वीकार करते हैं[57] -

सामान्यलक्षण प्रत्यासत्ति, ज्ञानलक्षण प्रत्यासत्ति, योगज प्रत्यासत्ति।

अनुमान स्वरूप :-

न्यायदर्शन के भाष्यकार वात्स्यायनाचार्य ने 'अनुमान' शब्द का अर्थ 'मितेन लिङ्गेन अर्थस्य अनु पश्चात् मानम् - अनुमानम्।' किया है। अर्थात् 'प्रत्यक्ष प्रमाण' से ज्ञात हुए 'लिङ्ग' द्वारा अर्थ के 'अनु' अर्थात् पश्चात् उत्पन्न होने वाले ज्ञान को 'अनुमान' कहते हैं। तर्कसंग्रहकार कहते हैं - 'अनुमितिकरणम् - अनुमानम्' अर्थात् अनुमिति के करण को अनुमान कहते हैं। 'लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्' ऐसा तर्कभाषाकार लिखते हैं। अर्थात् 'लिङ्गपरामर्श' ही अनुमान है। क्योंकि जिससे अनुमिति की जाती है उसे अनुमान कहते हैं।[58]

---

[53] नामजात्यादिविशेषणविशेष्यसम्बन्धानवगाहिज्ञानं निर्विकल्पकम्।

[54] तर्कसंग्रह

[55] नामजात्यादियोजनासहितं ज्ञानं सविकल्पकम् ।

[56] तर्कसंग्रह

[57] सामन्यलक्षणो ज्ञानलक्षणो योगजस्तथा - कारिकावली का. सं. ६३

[58] येन हि अनुमीयते तदनुमानम् ।

लिङ्गपरामर्श के द्वारा ही अनुमान किया जाता है, अतः लिङ्गपरामर्श ही अनुमान है। अब जिज्ञासा होती है कि 'लिङ्गपरामर्श' क्या है, तब कहते हैं - 'व्याप्तिबलेनार्थगमकं लिङ्गम्, तस्य तृतीय ज्ञानं परामर्शः। व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः। यथा 'वह्निव्याप्य धूमवानयं पर्वतः' इति ज्ञानं परामर्शः' अर्थात् व्याप्ति के आधार पर अर्थ का जो बोधक होता है, लिङ्ग कहते हैं। जैसे 'धूम', 'अग्नि' का लिङ्ग है। उस 'धूम' रूप लिङ्ग का तृतीय ज्ञान 'परामर्श' शब्द से कहा जाता है। तथा व्याप्ति से विशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञान को परामर्श कहते हैं। पुनः जिज्ञासा होती है कि व्याप्ति क्या है? तब इसके उत्तर में तर्कसंग्रहकार कहते हैं - "साहचर्यनियमो व्याप्तिः, यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति।" अर्थात् भूयो भूयो दर्शन से जन्य ज्ञान सहचार कहलाता है। पक्षधर्मता के विषय में कहते हैं - 'व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता'।

अनुमिति विवेचन :-

अनुमिति के प्रति व्याप्तिज्ञान करण और परामर्श व्यापार है।[59] यद्यपि प्रत्यक्ष प्रमाण श्रेष्ठ प्रमाण है तथापि "प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः"[60] इस उक्ति के अनुसार सभी नैयायिक अनुमान में विश्वास रखते हैं, एवं अनुमान से जन्य अनुमिति (व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानमनुमितिः' उसका निरूपण तत्त्वचिन्तामणिकार गङ्गेशोपाध्याय ने अनुमिति प्रकरण में किया है। तर्कसंग्रहकार लिखते हैं - 'परामर्शजन्यं ज्ञानम् - अनुमितिः'[61] अर्थात् परामर्श से जन्य ज्ञान को अनुमिति कहते हैं।

अनुमान के पञ्चावयव:-

अनुमानवाक्य के पाँच अवयव होते हैं। महर्षि गौतम अनुमान के पाँच अङ्गों का निर्देश करते हैं; ये अनुमान अवयव इस प्रकार हैं - प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन।

---

[59] व्यापारस्तु परामर्शः करणं व्याप्तिर्धी भवेत्। न्यायसिद्धान्तमुक्तावली।

[60] त.चि.अनु.प्र.

[61] तर्कसंग्रह

प्रतिज्ञा - 'साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा'[62]

हेतु - "उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः"[63]

उदाहरण - 'साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्'[64]

उपनय - 'उदाहरणापेक्षः तथेत्युपसंहारो न तथेति वा साध्यस्योपनयः'[65]

निगमन - हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनम्'[66]

अनुमान के भेद :-

महर्षि गौतम अनुमान के तीन भेद स्वीकार करते हैं; पूर्ववत्, शेषवत्, और सामान्यतोदृष्ट। न्यायसूत्र में कहा है - "अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्वच्छेषवत् सामान्यतोदृष्टञ्च"[67]।

पूर्ववत् का अर्थ है कारण के कार्य का अनुमान, जैसे आकाश में मेघों की उठान से भावी वृष्टि का अनुमान।

शेषवत् का अर्थ है कार्य से कारण का अनुमान, जैसे प्रवाह की वृद्धि, द्रुतगामिता, तृणादि-बहुलता आदि से भूत वृष्टि का अनुमान।

सामान्यतोदृष्ट का अर्थ है कार्य-कारण-भाव नियम न होने पर भी एक सहचरित पदार्थ से अन्य सहचरित पदार्थ का अनुमान, जैसे एक स्थान में देखे गये पदार्थ का अन्य स्थान में दिखाई देना उस पदार्थ के अन्य स्थान में जाने से होता है।

तर्कभाषाकार केशवमिश्र ने उक्त तीनों अनुमानों को दो वर्गों में प्रदर्शित किया है- वीत और अवीत । वीत-अनुमान वह है जो साध्य-साधन के अन्वय-सहचार के आधार पर किसी पदार्थ का भाव रूप में साधन करता है । इसके विपरीत अवीत-अनुमान वह है जो साध्य-साधन के व्यतिरेक-सहचार को आधार बनाकर प्रवृत्त हो किसी का विधायक न होकर प्रतिषेधक होता है। शेषवत् अनुमान अवीत-अनुमान है तथा पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट वीत-अनुमान हैं।

---

[62] न्यायसूत्र १/१/३३ ।

[63] न्यायसूत्र १/१/३४ ।

[64] न्यायसूत्र १/१/३६ ।

[65] तर्कसंग्रह

[66] गो.सू. १/१/३९

[67] न्यायसूत्र १/१/५ ।

स्वार्थानुमान-परार्थानुमान :-

अनुमान को मुख्यतया दो भेदों में विभक्त करते हैं; स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। स्वयं के ज्ञान का हेतुभूत जो अनुमान होता है, उसे 'स्वार्थानुमान' कहते हैं।[68] तथा जब कोई पुरुष स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके, उस अनुमित अग्नि का ज्ञान किसी अन्य पुरुष को कराने के लिये पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग करता है, तब उसे परार्थानुमान कहते हैं।[69] जैसे 'पर्वतोवह्निमान्' - यह 'प्रतिज्ञा' है। 'धूमवत्त्वात्' - यह 'हेतु' है। 'यो यो धूमवान् सो सोऽग्निमान्' - यह 'उदाहरण' है। यह पर्वत भी उसी प्रकार का है (तथा चायं धूमवान्) - यह 'उपनय' है। इसलिए यह भी 'अग्निमान्' है 'तस्मात् तथा' - यह 'निगमन' है। इन पाँच वाक्यों का प्रयोग होने पर श्रोता को इन वाक्यों द्वारा पर्वत में अग्नि-व्याप्य-धूम का मानस निश्चय होता है। यह निश्चय ही परार्थानुमान है। परार्थानुमान इन पाँच वाक्यों से सम्पन्न होता है इनके समूह को न्याय कहा जाता है। इस रीति से प्रतिज्ञा आदि पाँचों अवयवों के सहित इस अनुमान वाक्य के द्वारा प्रतिपादित - पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्तत्व, अबाधितविषयत्व, असत्प्रतिपक्षत्व - पाँचों रूपों से युक्त हुए हेतु से अन्य व्यक्ति भी अग्नि का ज्ञान कर पाता है। इसीलिये इसे 'परार्थानुमान' कहते हैं।

हेतु-भेद :-

हेतु तीन प्रकार के बताये गये हैं - 'लिङ्गं त्रिविधम्'[70]। अन्वयव्यतिरेकि, केवलान्वयि, और केवलव्यतिरेकि। अन्वय का अर्थ है - भाव तथा व्यतिरेक का अर्थ है - अभाव।

अन्वयव्यतिरेकी - जिसमें अन्वय और व्यतिरेक दोनों के दृष्टान्त मिलते हैं, उसे अन्यवव्यतिरेकीअनुमान कहते हैं। जैसे -'पर्वतो वह्निमान् धूमात्'। अन्वयव्याप्ति -'यत्र धूमः तत्र वह्निः'। व्यतिरेकव्याप्ति - 'यत्र वह्न्याभावः तत्र धूमाभावः'। अन्वयव्यतिरेकी हेतु पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति, अबाधितविषयत्व, असत्प्रतिपक्षत्व इन पाँच रूपों से उपपन्न होता है। इन पाँचों रूपों से युक्त होने पर ही अपने साध्य की अनुमिति कराने में समर्थ होता है।

---

[68] स्वार्थं स्वप्रतिपत्तिहेतुः, तर्कभाषा

[69] तर्कभाषा

[70] तर्कसंग्रह

केवलान्वयी - जिसमें केवल अन्वयव्याप्ति के दृष्टान्त मिलते हैं तथा व्यतिरेक का सर्वथा अभाव प्राप्त होता है, उसे केवलान्वयी अनुमान कहते हैं। जैसे -'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्'। 'यत्प्रमेयं तदभिधेयम्' यह केवल अन्वय अनुमान का उदाहरण मिलता है। 'यत्राभिधेयाभावः तत्र प्रमेयाभावः' ऐसा व्यतिरेक अनुमान का दृष्टान्त कहीं प्राप्त नहीं होता है क्योंकि सभी प्रमेय अभिधेय कहलाते हैं।

केवलव्यतिरेकी - जिसमें केवल व्यतिरेकव्याप्ति के दृष्टान्त मिलते हैं तथा अन्वय का सर्वथा अभाव प्राप्त होता है, उसे केवलव्यतिरेकी अनुमान कहते हैं। जैसे - 'जीवच्छशरीरं सात्मकं प्राणादिमत्वात्' । 'यत्सात्मकं न तत्प्राणादिमत् न, यथा घटपटादिः' इस अनुमान में केवलव्यतिरेक का उदाहरण मिलता है। जो चैतन्यवान् है, वह आत्मवान् है। इस अन्वय का कोई दृष्टान्त नहीं मिलता है, क्योंकि सभी चैतन्य पक्ष कोटि में जाते हैं। अतः अन्वय का दृष्टान्त न मिलने से इसे 'केवलव्यतिरेकी' अनुमान कहते हैं।

व्याप्ति का वैविध्यः-

पञ्चावयव-वाक्य के प्रयोग में हो 'हेतु' का निर्देश किया गया है, वह हेतु, 'अन्वयव्यतिरेकी, 'केवलान्वयी, 'केवलव्यतिरेकी', भेद से तीन प्रकार का होता है। इस हेतु को तीन प्रकार करने का आधार दो प्रकार की व्याप्ति होती है — १. अन्वयव्याप्ति २. व्यतिरेकव्याप्ति। भासर्वज्ञ अपने भूषण ग्रन्थ में कहते हैं — 'तत्र साधनसामान्यं व्याप्यं, साध्यसामान्यं व्यापकम् इत्ययं व्याप्य-व्यापकभावोऽन्वयः। साध्यसामान्याभावो व्याप्यः, साधनसामान्याभावो व्यापक इत्ययं व्याप्यव्यापकभावो व्यतिरेकः' इत्युभयरूपव्याप्तेः सद्भावादित्यर्थः'। दो वस्तुओं के मध्य अविनाभाव अथवा नियत साहचर्य सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं, अर्थात् 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः।[71]

अन्वयव्याप्ति का स्वरूप :-

[71] तर्कभाषा, अनुमान निरुपण।

'हेतुव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्य' अन्वयव्याप्ति का स्वरूप है। अर्थात् हेतु का व्यापक जो साध्य उसके अधिकरण में हेतु का रहना। जैसे - 'यत्र-यत्र धूमः, तत्र-तत्र वह्निः' में व्याप्यरूप हेतु (धूम) का जो व्यापकरूप साध्य (अग्नि) है, उसके अधिकरण (महानस) में धूम (व्याप्य) रहता है। उस रीति से 'धूम' के व्यापक 'अग्नि' के अधिकरण में 'धूम' का रहना ही 'धूम' में 'अग्नि' की अन्वयव्याप्ति है। इसी को 'यत्र-यत्र धूमः तत्र-तत्र वह्निः'कह कर बताया गया है।

व्यतिरेकव्याप्ति का स्वरूप :-

'साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वम्' व्यतिरेकव्याप्ति का स्वरूप है। अर्थात् साध्याभाव का व्यापक अभाव (हेत्वाभाव)। यथा - यत्र-यत्र वह्न्याभावः तत्र-तत्र धूमाभावः' यहाँ व्यतिरेकव्याप्ति है। उस साध्याभाव (अग्न्याभाव) का व्यापक अभाव होगा 'धूमाभाव', उसका प्रतियोगी होगा 'धूम'। इस रीति से व्याप्यरूप अग्न्याभाव (साध्याभाव) का व्यापक जो हेत्वभाव (धूम का अभाव), उसका प्रतियोगित्व धूम (हेतु) में रहेगा। इसलिये धूम (हेतु) में अग्नि (साध्य) की व्यतिरेकव्याप्ति भी उपलब्ध हो रही है। अतः 'धूमवत्त्वात्' (धूम) हेतु अन्वय-व्यतिरेकी है। अन्वयव्याप्ति में जो 'अन्वय' शब्द है, उसका अर्थ 'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम्' अर्थात् 'साधन के रहने पर साध्य की सत्ता का रहना'। इसमें 'हेतु' व्याप्य होता है, और 'साधन' व्यापक होता है। दो भाव पदार्थों की व्याप्ति को अन्वयव्याप्ति कहते हैं। यथा — यत्र-यत्र धूमः तत्र-तत्र वह्निः' तथा व्यतिरेक व्याप्ति में जो 'व्यतिरेक' शब्द है, उसका अर्थ 'तदभावे तदभावः' अर्थात् 'साध्य' के अभाव में 'साधन' का अभाव रहना ही व्यतिरेक है। इसमें 'साध्याभाव' व्याप्य होता है और 'हेत्वभाव' व्यापक होता है। यथा — 'यत्राग्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति' यही दोनों में मुख्य भेद है।

मीमांसक दृष्टि से मणिकार का पञ्चव्याप्तिलक्षण

प्रथमलक्षण उद्भावन में बीज :-

गङ्गेशोपाध्याय द्वारा विरचित तत्त्वचिन्तामणि नव्यन्याय का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पद-पदार्थ सुव्यवस्थित तरह से व्याख्यायित हैं। इस ग्रन्थ में लिङ्ग के लिये हेतु शब्द तथा लिङ्गी के लिये साध्य शब्द का प्रयोग मिलता है, एवं इन दोनों के लिये व्याप्ति शब्द का प्रयोग किया गया है। तत्त्वचिन्तामणिकार ने अनुमान के लक्षण में

"व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानमनुमितिः, तत्करणं अनुमानम्' अर्थात् व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्मता-ज्ञान-पक्ष के साथ साध्य-निरूपित व्याप्ति से विशिष्ट हेतु के सम्बन्ध ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान से अनुमिति है, तथा अनुमिति का करण अनुमान है, ऐसा निरूपण अनुमिति प्रकरण में किया गया है। किन्तु जिससे जन्य अनुमिति, उसका करण जो व्याप्तिज्ञान उसके विषय या घटक जो व्याप्ति वह क्या है?[72] इस आशय में मणिकार ने व्याप्तिपञ्चक के निरूपणारम्भ में कहा "नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः"[73]। अर्थात् इसके समाधान में -उपोद्धघातसङ्गति "चिन्तां प्रकृतसिद्ध्यर्थामुपोद्घातं विदुर्बुधाः" से पूर्वपक्ष के रूप में व्याप्ति के पाँचों लक्षण का उपस्थापन किया गया है — "न तावदव्यभिचरितत्वम्, तद्धि न साध्याभाववदवृत्तित्वम् ,साध्यवद्भिन्न साध्याभाववदवृत्तित्वम्, साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्, सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्, साध्यवदन्यावृत्तित्वम् वा।"[74] यह पाँचों व्याप्ति के लक्षण यथार्थ स्वरूप नहीं है ऐसा मणिकार स्वंय स्वीकार करते हैं। "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इत्यादि सद्धेतु स्थलों में लक्षणसमन्वय होने से एवं "पर्वतो धूमवान् वह्नेः" इत्यादि असद्धेतु स्थलों में लक्षणसमन्वय न होने से पाँचों लक्षणों की अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति तो नहीं होगी, किन्तु केवलान्वयि साध्यक "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" सद्धेतु स्थल में साध्याभाव-वाच्यात्वाभावों के अप्रसिद्ध होने से इस स्थल में पाँचों लक्षणों की अव्याप्ति होगी, एवं ऐसी अव्याप्ति स्वयं मणिकार को अभिमत है। इस आशय से मणिकार ने कहा — "केवलान्वयिन्यभावात्"[75]

समास प्रकार :-

अनुमिति का करण जो व्याप्तिज्ञान है, वह अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति के भेद से दो प्रकार का है। अन्वयव्याप्ति के अन्तर्गत पूर्वपक्षव्याप्ति तथा सिद्धान्तव्याप्ति कहे गये हैं। पूर्वोक्त पाँचों लक्षण पूर्वपक्ष व्याप्ति हैं तथा सिद्धान्त व्याप्ति - "प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्सामानाधिरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यन्न भवति

---

[72] अनुमानप्रामाण्यं निरूप्य व्याप्तिस्वरूपनिरूपणमारभते- नन्वित्यादिना, व्याप्तिपञ्चक, माथुरी, पृ.१

[73] व्याप्तिपञ्चक, माथुरी,१

[74] व्याप्तिपञ्चक

[75] व्याप्तिपञ्चक मा. पृ. १२

तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।[76] व्यतिरेक व्याप्ति - "साध्याभावव्यापकीभूताऽभावप्रतियोगित्वं व्यतिरेकव्याप्तिः।"[77] यहाँ पर पूर्वपक्षव्याप्ति के लक्षणों पर विधिवत् विचार किया जायेगा। इन लक्षणों पर साक्षात् रूप से मथुरानाथ ने 'माथुरीटीका' तथा रघुनाथशिरोमणि ने 'दीधिति' टीका लिखी है, एवं जगदीशतर्कालंकार ने 'जागदीशी' और गदाधरभट्टाचार्य ने 'गादाधरी' साक्षात् रूप से दीधिति पर टीका लिखी है। पञ्चलक्षणी ग्रन्थ का आरम्भ जिज्ञासा वाक्य "नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः?"[78] अर्थात् अनुमिति के हेतु व्याप्ति-ज्ञान में व्याप्ति क्या है?' से होता है। अनुमितौ हेतुः इति अनुमितिहेतुः - सप्तमी तत्पुरुष समास, अनुमिति हेतुभूतञ्च तद् व्याप्तिज्ञानम् - अनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञानम्, तस्मिन् - अनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने । यहाँ अनुमिति पद से विशेष 'अनुमिति' का ग्रहण किया है। 'अनुमानं प्रमाणं प्रमितिकरणतावच्छेदकधर्मवत्त्वात् इन्द्रियवत् ।' इस प्रकार व्याप्ति का आकार हुआ - यत्र-यत्र प्रमितिकरणतावच्छेदकधर्मवत्वं तत्र-तत्र प्रामाण्यम्' अतः यहाँ पर 'अनुमिति पद का अर्थ है—'अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमिति' जैसे 'पर्वतो वह्निमान् इस अनुमिति में पर्वत पक्ष एवं वह्नि साध्य होने से इस को पर्वतनिष्ठवह्न्यनुमिति कहा जाता है ।' अग्रिम हेतु पद के साथ अन्वय कर 'अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेतु' अर्थात् अनुमान में होने वाली प्रामाण्य की अनुमिति का हेतु।[79] आगे 'व्याप्तिज्ञाने' में जो व्याप्ति पद में सप्तमी-विभक्ति है उसका अर्थ विषयत्व है।[80] अतः 'अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेतुव्याप्तिज्ञानविषयीभूता व्याप्तिः का' अर्थात् अनुमान में होने वाली प्रामाण्य की अनुमिति का हेतु जो व्याप्ति-ज्ञान, उसमें होने वाली व्याप्ति क्या है?[81] तथा इस प्रकार से अनुमान में होने वाली प्रामाण्य की अनुमिति का हेतु व्याप्ति में अनुमान-प्रामाण्य के ज्ञापकत्व अथवा उपपादकत्व भी सिद्ध होता है। उपपादकत्व का अर्थ प्रकृत में 'ज्ञापकत्व'[82] अर्थात् 'ज्ञानप्रयोजकत्व' है। अनुमित्यात्मक ज्ञान का जनक व्याप्तिज्ञान

---

[76] सिद्धान्तलक्षण पृ.सं.१

[77] तर्कसंग्रह

[78] तत्त्वचिन्तामणि,अनुमान प्रकरण।

[79] अनुमितिहेत्वित्यस्याऽनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमिति हेत्वित्यर्थः, व्याप्तिपञ्चक, माथुरी।

[80] व्याप्तिज्ञाने इत्यत्र च विषयत्वं सप्तम्यर्थः, व्याप्तिपञ्चक, माथुरी।

[81] अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेतुव्याप्ति ज्ञानविषयीभूता व्याप्तिः केत्यर्थः । व्याप्तिपञ्चक, माथुरी।

[82] उपपादकत्वं चात्र ज्ञापकत्वम् ।

का विषय होने से व्याप्ति में ज्ञानप्रयोजकत्व सिद्ध है। अनुमान प्रमाण के निरूपण के अनन्तर व्याप्ति के निरूपण में उपोद्घात सङ्गति सूचित होती है।[83] यहाँ सङ्गति के जिज्ञासा में कहा है - "अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वम् सङ्गतित्वम्।"

वह सङ्गति छः प्रकार की है –

'सप्रसङ्गोपोद्घातो हेतुताऽवसरस्तथा । निर्वाहकैक्यकार्यत्वे षोढा सङ्गतिरिष्यते।।'

केचित्तु मत के अनुसार 'अनुमिति' पद से 'अनुमितिनिष्ठेतरभेदानुमिति' का ग्रहण करना है। जैसे 'सास्नावत्वं गोर्लक्षणम्' का ज्ञान होने पर 'सास्नावत्त्व' यह लक्षण 'गौ' में इतरभेदानुमिति कराता है—'गौः इतरभिन्ना सास्नावत्त्वात्'। इसी प्रकार अनुमिति का लक्षण भी अनुमिति में इतरभेदामिति कराता है — "अनुमितिः इतरभिन्ना व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्वात्'। 'यत्र व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्वं तत्र इतरभेदः' अतः ' अनुमितिनिष्ठेतरभेदानुमितिः' ऐसा अनुमिति पद से ग्रहण होगा। इस अनुमिति में जो हेतु = व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्वरूपहेतु है इसमें घटक जो व्याप्ति ज्ञान है उस व्याप्तिज्ञान में विशेषणीभूत व्याप्ति क्या है।[84] केचित्तु के मत में भी प्रकृतोपपादकत्वरूप उपोद्घात सङ्गति ही सूचित है, अनुमिति के लक्षण में व्याप्तिज्ञान घटक होने से अनुमितिलक्षणज्ञान व्याप्तिज्ञान के अधीन है और व्याप्तिज्ञान में व्याप्ति विषय है इस प्रकार व्याप्ति में बोधकत्वरूप उपपादकत्व लब्ध होता है।

व्याप्ति क्या है? इस प्रश्न के समाधान में मणिकार कहते हैं - 'न तावदव्यभिचरितत्वम्।' अर्थात् अव्यभिरचरितत्व पद से जो प्रतिपाद्य है वह व्याप्ति नहीं है। कथित वाक्य में घटक 'तावद्' पद केवल अलङ्कार रूप में प्रयुक्त हुआ है। अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य पाँच हैं -

१ साध्याभाववदवृत्तित्वम्
२ साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्
३ साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्
४ सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगितगत्वम्
५ साध्यवदन्यावृत्तित्वम्

---

[83] अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेत्वित्यनेन
व्याप्तेरनुमानप्रामाण्योपपादकत्वकथनादनुमानप्रामाण्यनिरूपणानन्तरं व्याप्ति निरूपणे उपोद्घात एव संगतिः सूचिता |

[84] चानुमिति निष्ठेतरभेदानुमितौ यो हेतुः प्रागुक्तव्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञान त्वरूपस्तद्घटकं यद्व्याप्तिज्ञानं तदंशे विशेषणीभूता व्याप्तिः केत्यर्थः । व्या.प., पृ. २

इन पाँचों अव्यभिचरितत्व बोधक पदों से व्याप्ति प्रतिपाद्य नहीं होती है, अतः अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य व्याप्ति नहीं है।[85] यह पाँचों व्याप्ति क्यों नहीं है? तब मणिकार कहते हैं -

'केवलान्वयिन्यभावात्'

अब मथुरानाथ पाँचों लक्षणों में से प्रथम लक्षण का उपादान करके समास-विग्रह को प्रदर्शित करते हैं । प्राचीनाचार्यों के मत में "साध्याभाववदवृत्तित्वम्" में समास इस प्रकार करते हैं। वृतु वर्तने धातु से 'क्त' प्रत्यय करके 'वृत्तम्'[86] शब्द बनाते हैं, जिसका अर्थ वृत्तिः अथवा वृत्तित्वम् है। पुनः वृत्तस्य अभावः- अवृत्तम्[87] शब्द अव्ययीभाव समास करके निष्पन्न होता है। अब साध्यस्य अभावः -साध्याभावः इति षष्ठी तत्पुरुष समासः, साध्याभावः यत्रास्ति सः साध्याभाववान्, तथा साध्याभाववतः अवृत्तम् इति साध्याभाववदवृत्तम् षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर,[88] उसके बाद साध्याभाववदवृत्तम् से मत्वर्थीय ईन् प्रत्यय[89] करके भाव में 'त्व' प्रत्यय [90] करने से 'साध्याभाववदवृत्तित्वम्' शब्द निष्पन्न होता है। अर्थात् साध्याभावाधिकरणनिरुपितवृत्तित्वाभावः ऐसा बोध होता है। किन्तु मथुरानाथ प्राचीनोक्त विग्रह में दोष प्रदर्शित करते हैं - **"न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेतदर्थप्रतिपत्तिकरः' इत्यनुशासनविरोधात्।"** अर्थात् यदि समास घटक पदों का बहुब्रीहि समास करने पर अभीष्ट अर्थ लब्ध होता हो तो कर्मधारय समास करने के बाद मतुबर्थ प्रत्यय नहीं करना चाहिए।[91] यथा पीतं च तदम्बरं पीताम्बरम्, पीताम्बरं अस्ति अस्य इति पीताम्बरवान् यहाँ कर्मधारय करके मतुप् प्रत्यय करने से जो अर्थ प्राप्त है, 'पीतम् अम्बरं यस्य सः पीताम्बरः' बहुव्रीहि करने से भी वही अर्थ प्राप्त हो रहा है। तादृश स्थल में पीताम्बरवान् शब्द साधु नहीं है। अतः प्राचीनों के द्वारा 'साध्याभाववतः अवृत्तम् का तत्पुरुष समास करके बाद में मतुप् के अर्थ में 'इन्' प्रत्यय

---

[85] अतोऽव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यस्वरूपा नेत्यर्थः पर्यवसितः ।

[86] वृत्तम् वृत्तिः भावे निष्ठाप्रत्ययात्, माथुरी

[87] वृत्तस्या भावोऽवत्तं वृत्याभाव इति यावत्। माथरी

[88] साध्याभाववतोऽवृत्तं साध्याभाववदवृतम् । माथुरी

[89] साध्याभाववृत्त्यभाव इति यावत् । तद्यत्रास्ति स साध्याभाववदवत्ती । मत्वर्थीयेन्प्रत्ययात् । माथुरी

[90] तस्य भावः साध्यभाववदवृत्तित्वम् । तथा च साध्या भाववद्वृत्त्यभाववत्त्वमिति फलितमिति प्राञ्चः |

[91] 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः' इत्यनुशासनविरोधात् । तत्र कर्मधारयपदस्य बहुव्रीहीतरसमासपरत्वात् । माथुरी

करना अनुशासन विरुद्ध है। पुनः शङ्का होती है कि, अनुशासन के अनुसार कर्मधारय करके मतुबर्थ करना असाधु है, किन्तु यहाँ हमने तत्पुरुषसमास करके मतुबर्थ किया है। अतः अनुशासन का विरोध कैसे? तब इसके समाधान में मथुरानाथ कहते हैं - 'तत्र कर्मधारयपदस्य बहुब्रीहीतरसमासपरत्वात्' अर्थात् बहुव्रीहि से भिन्न किसी भी समास से मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं करना चाहिए यदि बहुव्रीहि से अर्थलाभ हो रहा हो तो। पुनः जिज्ञासा होती है कि कर्मधारय पद बहुव्रीहीतर समास का बोधक है इसमें क्या प्रमाण है? तब ग्रन्थकार कहते हैं - "अगुणवत्त्वमिति साधर्म्य व्याख्यानावसरे गुणप्रकाशरहस्ये तद्दीधितिरहस्ये च स्फुटम्"[92]। अर्थात् गुणादि षड् पदार्थों के 'अगुणवत्त्वम्' साधर्म्य व्याख्यान के अवसर में स्पष्टरूप से 'गुणप्रकाशरहस्य' तथा 'दीधितिरहस्य' नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित है। जैसे- गुणस्य अभावः अगुणम् - अव्ययीभाव समास, तद् यत्रास्ति स अगुणवान् तस्याभावः अगुणवत्त्वम्, तथा गुणाः यत्र विद्यन्ते ते गुणवन्तः, न गुणवन्तः अगुणवन्तः, तेषां भावः अगुणवत्त्वम् ; इन दोनों पक्षों में द्वितीय पक्ष के अनुसार अगुणवत्त्वम् शब्द का निष्पादन समीचीन है। पुनः प्राचीनों का मथुरानाथ एक नवीन अनुशासन के बल से खण्डन करते हैं - "अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्समासाऽनिविष्टपदार्थान्तरान्वयस्याव्युत्पन्नत्वात्।"[93] अर्थात् अव्ययीभाव समास में उत्तर पदार्थ के साथ इस समास में अनिविष्ट किसी अन्य दूसरे पदार्थ का अन्वय अव्युत्पन्न है। इसी प्रकार प्राचीन मतानुसार 'वृतस्याभावोऽवृत्तम्' ऐसा अव्ययीभाव समास किया गया है। यहाँ उत्तरपद 'वृत्तम्' पद है, उसका अर्थ 'वृत्तित्व' तादृश वृत्तित्व पदार्थ का अव्ययीभाव समास में अनिविष्ट पदार्थान्तर साध्याभाववत् पदार्थ का अन्वय अव्युत्पन्न माना गया है।[94] अतः प्राचीनों का समास-विग्रह अनुचित प्रतीत होता है। तदनन्तर कुछ लोग 'वृत्तेरभावः अवृत्तिः (अव्ययीभाव), साध्याभाववतः अवृत्तियत्रेति साध्याभाववदवृत्तिः (बहुव्रीहि), तस्य भावः साध्याभाववदवृत्तित्वम् करते हैं, किन्तु प्रथम अनुशासन का विरोध न होने पर भी द्वितीय अनुशासन का विरोध अवश्य दिखाई पडता है। अतः यह भी साधु नहीं है।[95]

---

[92] व्याप्तिपञ्चक, माथुरी।

[93] व्याप्तिपञ्चक, माथुरी।

[94] अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्समासाऽनिविष्टपदार्थान्तरान्वय स्याऽव्युत्पन्नत्वात्, माथुरी।

[95] अव्ययीभावसमासस्याव्यतया तेन समं समासान्तराऽसम्भवाच्च । न[पाध्यादिरूपाव्ययविशेषाणामेव समस्यमानत्वेन परिगणितत्वात् । माथुरी

अब मथुरानाथ स्वयं का मत प्रदर्शित करते हुए कहते हैं- 'साध्याभाववतो न वृत्तिः यत्र इति त्रिपदव्यधिकरणबहुव्रीह्युत्तरं त्व प्रत्ययः'।[96] अर्थात् साध्याभाववतः न वृत्तिर्यत्र इति साध्याभाववदवृत्ति (त्रिपदव्यधिकरणबहुव्रीहि), तस्य भावः साध्याभाववदवृत्तित्वम् यहाँ साध्याभाववद् में षष्ठी विभक्ति है उसका अर्थ निरूपितत्व[97] है, तथा निरूपितत्व का अन्वय वृत्तित्व पदार्थ के साथ करते हैं। तब जाकर 'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावः' यह निष्कर्ष रूप प्राप्त होता है। साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाववत्वम् ही 'अव्यभिचरितत्व' पद का अर्थ है। यहाँ त्रिपदव्यधिकरण के अतिरिक्त दूसरा कोई भिन्न विग्रह अभिष्ट अर्थ की प्राप्ति नहीं करा सकता है, और यही साधु है।[98]

प्रथमलक्षण का परिष्कार:-

मणिकार के अनुसार प्रथमलक्षण है - 'साध्याभाववदवृत्तित्वम् व्याप्तिः' अर्थात् साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः, सर्वप्रथम वृत्तित्वाभाव का परिष्कार करते हैं। वृत्तित्वाभावः का अर्थ वृत्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः। अर्थात् साध्याभाव के अधिकरण में हेतु का अवृत्ति होना- साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव कहलाता है। पर्वतो वह्निमान् धूमात् स्थल में साध्यः-वह्निः, साध्याभावः-वह्न्याभावः, तदधिकरणं-जलह्रदः, तन्निरूपित वृत्तिता - मीनादिनिष्ठा, वृत्तित्वाभावो धूमे सत्त्वात् भवति लक्षण समन्वयः, अतः लक्षण समन्वय हो गया। यहाँ वह्न्याभाव का अधिकरण जलह्रद में धूम अवृत्ति है। अतः धूम में साध्याभाववदवृत्तित्व होने से धूम वह्नि का व्याप्य है।

अब लक्षण घटक में 'वृत्तित्वाभाव' शब्द का परिष्कार करते हैं। साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः इस लक्षण में 'वृत्तित्वाभाव' का अर्थ 'वृत्तित्वसामान्याभाव' है। अन्यथा 'धूमवान् वह्नेः' इस स्थल में अतिव्याप्ति हो जायेगी। साध्याभाव- धूमाभाव का अधिकरण जैसे अयोगोलक,वैसे जलह्रद भी है अतः जलह्रद निरूपित वृत्तिता ही मीनदि में, वृत्तित्वाभाव धूम में अतः अतिव्याप्ति। यदि साध्याभाव-

---

[96] वस्तुतस्तु साध्याभाववतो न वृत्तिर्यत्रेति त्रिपदव्यधिकरणबहुव्रीह्युत्तरं त्वप्रत्ययः । माथुरी

[97] साध्याभाववत इत्यत्र निरूपितत्वं षष्ठ्यर्थः। माथुरी

[98] साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्त्यभाववत्त्वमव्यभिचरितत्वमिति फलितम् । न च व्यधिकरणबहुव्रीहिः सर्वत्र न साधुरिति वाच्यम् । माथुरी

धूमाभाव का अधिकरण अयोगोलक को भी लेते हैं तो -वृत्तित्वजलोभयाभाव को लेकर 'एकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्ति' इस न्याय द्वारा उक्त स्थल में अतिव्याप्ति होगी। इस अतिव्याप्ति दोष के वारण के लिए वृत्तित्वाभाव का वृत्तित्वसामान्याभाव[99] अर्थ करते हैं, तब अतिव्याप्ति नहीं होगी।

तब लक्षण स्वरूप भी इस प्रकार होगा -

"साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नवत्तितात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो व्याप्तिः।"

ऐसा लक्षण करने पर 'धूमाभावाधिरणनिरूपितवृत्तित्वजलोभयाभाव' नहीं ले सकते इसलिए तादृश वृत्तित्वसामान्याभाव के वह्नि में न रहने से अतिव्याप्ति नहीं होगी।[100]

इसी क्रम में साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तिता को हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ना होनी चाहिए, नहीं तो वह्निमान् धूमात् स्थल में अव्याप्ति होगी। यथा- वह्न्याभावाधिकरण=धूमावयव, तन्निरूपित वृत्तिता ही धूम निष्ठा होने से अव्याप्ति। तथा वह्न्याभावाधिकरण=जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता कालिक सम्बन्ध से धूमनिष्ठा है, वृत्तित्वाभाव न होने से अव्याप्ति। इसके अव्याप्ति दोष वारणार्थ साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तिता में - 'हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व'[101] विशेषण के उपादान से अव्याप्ति नहीं होगी। 'वह्निमान् धूमात्' स्थल में हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध संयोग सम्बन्ध है। अतः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिता के धूम में न रहने से अव्याप्ति नहीं होगी।

तब लक्षण का स्वरूप होगा-

"साध्याभावाधिकरणनिरूपितहेतुतावच्छेदसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नवत्तितात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो व्याप्तिः।"

अब मथुरानाथ साध्याभाव पद का परिष्कार करते हैं। पञ्चलक्षणीकार लिखते हैं - "साध्याभावश्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको

---

[99] साध्याभावाधिकरणवृत्त्यभावश्च तादृशवृत्तित्वसामान्याभावो बोध्यः, माथुरी।

[100] तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमाभाववज्जलह्रदादिवृत्त्यभावस्य धूमाभाववद्वृत्तित्व जलत्वोभयत्वावच्छिन्नाभावस्य च वह्नौ सत्त्वेऽपि न क्षतिः, माथुरी।

[101] वृत्तिश्च हेततावच्छेदकसम्बन्धेन विवक्षणीया, तेन वन्ह्यभाववति धूमावयवे जलह्रदादौ च समवायेन कालिकविशेषणतादिना च धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः, माथुरी।

बोध्यः।"[102] व्याप्तिलक्षण में साध्याभाव पद का अर्थ 'साध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः' ऐसा करने पर "पर्वतो वह्निमान् धूमात्", यहाँ अव्याप्ति होगी, क्योंकि साध्याभाव से समवायेन वह्न्याभाव का अधिकरण पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता धूम में, अतः अव्याप्ति।

पुनः साध्याभाव महानसीयवह्निर्नास्ति यह अभाव का अधिकरण पर्वत तन्निरूपित वृत्तिता ही धूम में है, अतः अव्याप्ति।

पुनः साध्याभाव-वह्निजलोभयं नास्ति, इस प्रकार का अभाव का अधिकरण पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता ही धूम में, अतः अव्याप्ति।

तब दोष-वारण के लिए साध्याभाव पद का परिष्कार करना आवश्यक है। तब साध्याभाव का अर्थ 'साध्यसामान्य' कहना चाहिए। ऐसा कहने से समावायेनवह्न्याभावः, संयोगेनवह्नघटोभयाभाव, तथा संयोगेनतत्व्यक्तयाभाव का ग्रहण न करके संयोगेनवह्न्याभाव का ही ग्रहण कर पायेंगे, तब तादृश साध्याभाव अर्थात् संयोगेनवह्न्याभाव का अधिकरण पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से मीनादि में वृत्तित्वाभाव धूम में, अतः लक्षण समन्वय हो गया।[103]

अब लक्षण का स्वरूप होगा -

"साध्यातावच्छेदकसम्बन्धाच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावाधिकरणनिरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नवत्तितात्वावच्छिन्नवृत्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावो व्याप्तिः।"

अब साध्याभाव का अधिकरण किस सम्बन्ध से अनुगृहीत है इसके विषय में माथुरीकार कहते हैं — ' न च साध्याभावाधिकरणत्वमभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेन विवक्षितमिति वाच्यम्।'[104] अर्थात् साध्याभाव का अधिकरण अभावीय विशेषणता विशेष-सम्बन्ध-स्वरूप सम्बन्ध से विवक्षित है। यदि ऐसा कहते है तब 'गुणत्ववान् ज्ञानत्वात्' तथा 'सत्तावान् जातेः' इन दोनों स्थलों में अव्याप्ति का वारण हो जायेगा किन्तु 'घटत्वात्यन्ताभाववान् पटत्वात्, एवं

---

[102] पञ्चलक्षणी, माथुरी।

[103] तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ समवायादिसम्बन्धेन वह्निसामान्याभाववति संयोगसम्बन्धेन तत्तद्वह्नित्ववजलत्वोभयत्वावच्छिन्नाभाववति च पर्वतादौ संयोगेन धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः । माथुरी।

[104] पञ्चलक्षणी, माथुरी, पृ.सं.४०

घटान्योन्याभाववान् पटत्वात्' इन स्थलों में अभावीय-विशेषणता-विशेष-सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण ही अप्रसिद्ध हो जायेगा। तब इसके निराकरण में एक विशेष नियम का नियमन किया गया है — 'अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरत्यन्ताभावस्य सप्तमपदार्थस्वरूपत्वात्'।[105] अर्थात् अत्यन्ताभाव एवं अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को भावरूप न मानकर सप्तमपदार्थ (अभाव) स्वरूप मानते हैं। तब साध्याभाव - घटत्वात्यन्ताभावाभाव का अधिकरण - घट, तन्निरूपित वृत्तिता घट में वृत्तित्वाभाव पट में, अतः लक्षण समन्वय, अव्याप्ति नहीं हुई।

किन्तु अन्य के मत में जो आचार्य - 'अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरत्यन्ताभावस्य प्रतियोग्यादि स्वरूपत्व नये' अर्थात् अत्यन्ताभाव के अत्यन्ताभाव को सप्तमपदार्थ स्वरुप न मानकर 'प्रतियोगिस्वरूप' स्वीकार करते हैं[106] तथा अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को 'प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूप' स्वीकार करते हैं, ऐसा सिद्धान्त स्वीकार करने वाले आचार्यों के मत में 'घटत्वात्यन्ताभाववान् पटत्वात्' तथा घटान्योन्याभाववान् पटत्वात्' दोनों स्थलों में साध्याभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति यथावत् बनी रहेगी। तब उक्त दोनों स्थलों में अव्याप्ति के वारण के लिए लक्षण को परिष्कृत करते हैं, यदि लक्षण में -

"साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध"[107] से साध्याभाव का अधिकरण अभिमत है, ऐसा कह देने से अव्याप्ति दोष वारण हो
जायेगा।

तब लक्षण का स्वरूप होगा -

"साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्माव-
च्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नात्यन्ताभावनिरूपितसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धाव-
च्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगिता

---

[105] पञ्चलक्षणी, माथुरी, पृ.सं.४१

[106] पञ्चलक्षणी, माथुरी, पृ.सं.४१

[107] पञ्चलक्षणी, माथुरी, पृ.सं.४१

वच्छेक-

सम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणतावन्निरूपितहेतुतावच्छेदकदसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितात्वेत-रधर्मानवच्छिन्नवृत्तितात्वावच्छिन्नवृत्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावो व्याप्तिः।"

सामान्यपद की अनिवार्यता :-

लक्षण घटक में सामान्य पद आया है। सामान्य पद के बिना भी "वह्निमान् धूमात्", "घटत्वात्यन्ताभाववान् पटत्वात्" तथा "घटान्योन्याभाववान् पटत्वात्" स्थलों में लक्षण समन्वय हो जायेगा। तब इस सामान्य पद की क्या आवश्यकता है? इस शङ्का के निवारणार्थ आचार्य कहते हैं कि "समावायसम्बन्धेनप्रमेयवान् ज्ञानत्वात्" तथा "विषयितासम्बन्धेनप्रमेयवान् ज्ञानत्वात्" स्थलों में अव्याप्ति सदैव बनी रहेगी। जैसे "समवायेनप्रमेयवान् ज्ञानत्वात्" स्थल में यहाँ समवायेन प्रमेय साध्य है, समवाय सम्बन्ध से प्रमेय द्रव्य, गुण, कर्म में रहता है, ज्ञानत्व हेतु केवल ज्ञान में रहता है, अतः सद्धेतु है। अब यहाँ साध्य-प्रमेय, साध्याभाव-प्रमेयाभाव, तदधिकरण-

साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्याभाव[108] - प्रमेयाभाव में साध्य की प्रतियोगिता के लिए प्रमेयाभाव का कालिक -सम्बन्ध से अभाव लिया, अर्थात् प्रमेयाभावाभाव यद्यपि एतादृश प्रमेयाभावाभाव को साध्यस्वरूप नहीं होना चाहिए, तथापि यावत्साध्य के प्रमेय स्वरूप होने से प्रमेयाभावाभाव भी साध्य (प्रमेय) के अन्तर्गत आ जाता है। अतः प्रमेयाभावाभाव की प्रतियोगिता भी साध्यीयप्रतियोगिता हो गयी। तादृश प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध कालिक सम्बन्ध तादृश कालिक सम्बन्ध से साध्याभाव - प्रमेयाभाव का अधिकरण - जन्यज्ञान, तन्निरूपित वृत्तिता ज्ञानत्व हेतु में, वृत्तित्वाभाव ज्ञान में नहीं गया अतः अव्याप्ति।

इसी प्रकार से "विषयितासम्बन्धेनप्रमेयवान् ज्ञानत्वात्" में अव्याप्ति दोष बना रहेगा।

अतः अव्याप्ति दोष वारणार्थ निरूक्त सम्बन्ध में सामान्यपद देना आवश्यक है।[109] ऐसा कहने से उक्त स्थलों में प्रमेयाभाव का कालिकसम्बन्ध से जो अभाव 'प्रमेयाभावाभाव' वह

---

[108] पञ्चलक्षणी, माथुरी, पृ.सं.४२

[109] समवायविषयित्वादिसम्बन्धेन प्रमेयादिसाध्यके ज्ञानत्वादिहेतौ
साध्यतावच्छेदकसमवायादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयाद्यभावस्य कालिकादिसम्बन्धेन योऽभावः सोऽपि प्रमेयतया

यत्किञ्चितसाध्यस्वरूप होने पर भी साध्यसामान्य स्वरूप नहीं है, अतः तादृश प्रमेयाभावाभाव की प्रतियोगिता साध्यसामान्यीयप्रतियोगिता नहीं है, किन्तु प्रमेयाभाव का स्वरूप सम्बन्ध से जो अभाव - प्रमेयाभावाभाव, उसके निखिलसाध्यस्वरूप होने से तादृश प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध- स्वरूप सम्बन्ध, तादृश स्वरूपसम्बन्ध से प्रमेयाभाव का अधिकरण (प्रथमस्थल में) सामान्यादि एवं (द्वितीय स्थल में) घटादि होंगे, तन्निरूपितवृत्तित्वाभाव के ज्ञानत्व हेतु में रहने से अव्याप्ति नहीं होगी।

लक्षण में 'साध्यसामान्यीयत्वम्' शब्द का अर्थ 'साध्यसामान्यीत्वञ्च यावत्साध्यनिरूपितत्वं स्वानिरूपकसाध्यभिन्नत्वमिति यावत्' [110] अर्थात् यावत् साध्यनिरूपितत्व है, जिसका स्वानिरूपक

साध्यक भिन्नत्व होता है। स्वानिरूपकसाध्यकभिन्नत्वम् - स्वानिरूपकसाध्यकभिन्नाप्रतियोगिता, यथा घटाभाव की प्रतियोगिता घटनिष्ठा अतः घटाभावनिरूपितप्रतियोगिताघटनिष्ठा अर्थात् प्रतियोगिताकनिरूपकघटाभाव, पटनिष्ठाप्रतियोगिताकनिरूपकपटाभाव।

स्व पद से प्रतियोगिता, इसका निरूपक वह्न्याभावाभाव (वह्नि साध्य)। स्व (घटनिष्ठप्रतियोगिता) इसका अनिरूपक साध्यवह्नि। यथा घटाभाव का स्वरूप सम्बन्ध से जो अभाव घटाभावाभाव घट स्वरूप है। अर्थात् घटाभावनिष्ठप्रतियोगिता का निरूपक घट है। न कि साध्य (वह्नि) एवं वह्न्याभाव का स्वरूप सम्बन्ध से जो अभाव वह्न्याभावाभाव वह्नि स्वरूप है। अतः वह्न्याभावनिष्ठप्रतियोगिता का साध्य है।

यहाँ पूर्वपक्षी गौरव दोष की शङ्का करता है कि -

'साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेद -कसम्बन्ध' यह गौरवभूत सम्बन्ध है। तब इसके उत्तर में कहते हैं कि तादृश सम्बन्ध के गुरूभूत होने पर भी भिन्न-भिन्न साध्यक स्थलों में साध्याभावाधिकरणता का नियामक स्वरूपसमवायादि भिन्न-भिन्न सम्बन्धों का तादृश एक उक्ति के द्वारा संग्रह होने से गौरव दोष नहीं हैं। क्योंकि साध्य भेद से कार्यकारणभाव में भेद होता है।[111]

साध्यान्तर्गतस्तदीयप्रतियोगितावच्छेदककालिकादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणे (जन्य) ज्ञाने ज्ञानत्वादेर्वृत्तेरव्याप्तिवारणाय सामान्यपदोपादानम् । माथुरी।

[110] पञ्चलक्षणी, माथुरी, पृ.सं.४२

[111] साध्य(साधन)भेदेन कार्यकारणभावभेदात् । माथुरी।

पुनः निरुक्त सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण लेने पर भी 'घटान्योन्याभाववान् पटत्वात्'[112] में अव्याप्ति दोष परिहार नहीं होता है। साध्य-घटान्योन्याभाव (घटभेद), साध्याभाव - घटान्योन्याभाव घटत्वस्वरूप, तादृश साध्याभाव में साध्य-घटभेद की प्रतियोगिता नहीं है। अतः अव्याप्ति दोष बना ही रहा है। तब उक्त अव्याप्ति का समाधान हेतु कहते हैं कि साध्याभाव में साध्य की प्रतियोगिता नहीं आती है, वहाँ पर साध्याभाव का एक और अभाव लेना चाहिए। तब साध्य-घटभेद, साध्याभाव - घटभेदाभाव, उसका एक और अभाव -घटभेदाभावाभाव घटभेद स्वरूप होगा, और घटभेदाभावाभाव की प्रतियोगिता घटभेदाभाव (घटत्व) में होगा, तब साध्याभाव - घटभेदाभाव में साध्य की प्रतियोगिता घटभेदाभाव (घटत्व) लब्ध हो जायेगा। इस रीति से घटत्व में घटभेद की प्रतियोगिता चली गई, तादृश समवाय सम्बन्ध से साध्याभाव (घटत्व) का अधिकरण घट, तन्निरूपित वृत्तित्वाभाव पटत्व में , अतः नाव्याप्ति ।

यहाँ पर पूर्वपक्षी अपना सिद्धान्त रखते हैं, कि घटभेदाभावाभाव घटभेदस्वरूप नहीं होता है।[113]अपितु घटत्वभावस्वरूप होता है। जैसे घटभेद का अभाव = घटत्व होता है तथा उसका पुनः अभाव अर्थात् घटत्वाभाव कहलाता है। अतः घटभेदभावाभाव घटत्वाभाव स्वरूप होने से साध्याभाव में साध्य की प्रतियोगिता नहीं आ सकती है अतः पूर्वोक्त स्थल में अव्याप्ति का वारण असम्भव है।

तब सिद्धान्ती अव्याप्ति दोष के वारण में समाधान प्रस्तुत करते हैं कि - घटभेदाभावाभाव घटभेद स्वरूप होता है। जहाँ घट सामान्य की प्रतीति होती है वहाँ पर घटात्यन्ताभाव का ज्ञान नहीं होता किन्तु घटात्यन्ताभावाभाव की प्रतीति होती है, अतः घटात्यन्ताभावाभाव को घटस्वरूप माना जाता है। उसी प्रकार से जहाँ पर 'घटभेद' की प्रतीति होती है, वहाँ घटभेदाभाव का ज्ञान नहीं होता किन्तु घटाभेदाभावाभाव की प्रतीति होती है, अतः घटभेदाभावाभाव को घटभेद स्वरूप माना जाता है। पूर्वपक्षी का घटभेदाभावाभाव को घटभेद स्वरूप न मानना युक्तिसङ्गत नहीं है। सिद्धान्ती अपने मत को युक्ति पूर्वक स्थापित हेतु कहते हैं कि यदि घटभेदाभावाभाव को घटत्वाभाव स्वरूप मान भी लिया जाए तब भी घटभेदाभावाभाव घटभेदस्वरूप नहीं होता है, ऐसा सिद्ध करने के लिए कोई युक्ति न होने से घटभेदाभावाभाव को घटत्वाभाव के सदृश घटभेद स्वरूप मानने में कोई समस्या नहीं दिखाई

---

[112] माथुरी

[113] न चाऽन्यत्रात्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेऽपि घटभेदात्यन्ताभावत्वाच्छिन्नाभावो न घटादिभेदस्वरूपः, माथरी, ४४

पडती है।[114] आचार्य यज्ञपति को घटभेदाभावाभाव घटभेद स्वरूप ही होता है घटत्वस्वरूप नहीं यही अभिमत है।[115] इसके प्रमाण के रूप में आचार्य न्यायकुसुमाञ्जलिकार श्रीमदुयनाचार्य अपना मत प्रदर्शित करते हैं कि - "अभावविरहत्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगिता इत्याचार्याः"[116] अर्थात् वस्तुनिष्ठ प्रतियोगिता का लक्षण है- 'अभावाभावत्व'। जैसे घटनिष्ठप्रतियोगिता का लक्षण है घटाभावाभावत्व। ऐसा तभी सम्भव है जब घटाभावाभाव घटस्वरूप होगा। अतः घटाभावाभाव को घटस्वरूप मानना उचित प्रतीत होता है। इसी प्रकार घटभेदनिष्ठ प्रतियोगिता का लक्षण होगा —'घटभेदाभावाभावत्व'। तब घटभेदाभावाभावत्व घटभेदस्वरूप होगा। यदि ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं तथा घटत्वाभाव स्वरूप मानते हैं तो उक्त प्रतियोगिता लक्षण के लक्ष्य में न रहने से अव्याप्ति होगी और अलक्ष्य घटत्वाभाव में रहने से अतिव्याप्ति होगी। अव्याप्ति दोष वारणार्थ - घटभेदाभावाभाव को घटभेद स्वरूप मानना उचित प्रतीत होता है।[117]

घटभेदाभावाभाव घटत्वाभाव एवं घटभेद दोनों स्वरूप होने से घटत्वाभाव और घटभेद में ऐक्य प्रसङ्ग हो रहा है, तो भी नियमानुसार चलने पर घटभेदाभावाभाव - घटस्वरूप ही होता है, और यज्ञपति उपाध्याय को भी घटत्वभाव को घटभेद मानते हैं,[118] दोनों को एक मानने में कोई आपत्ति नहीं है। अतः अव्याप्ति का वारण हो जाता है।

अव्याप्यवृत्ति साध्यक स्थल में अव्याप्ति दोष का उद्भावन तथा समाधान :-

---

[114] यथाहि घटत्वावच्छिन्नघटवत्ताग्रहे घटात्यन्ताभावस्याग्रहाद् घटात्यन्ताभावाभाव्यवहाराच्च घटात्यन्ताभावाभावो घटस्वरूपस्तथा घटभेदवत्ताग्रहे घटाभेदात्यन्ताभावाऽग्रहाद् घटभेदात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटभेद एव तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति तत्सिद्धान्तो न युक्ति सह इति, माथुरी, ४४

[115] विनिगमाकाभावेपि घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववद् घटभेदस्यापि घटभेदात्यन्ताभावाभावत्वसिद्धेरप्रत्यूहत्वाच्च। अत एव तादृशसिद्धान्तो नोपाध्यायसम्मतः। माथुरी, ४५

[116] माथुरी

[117] तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यैव तत्स्वरूपत्वाभ्युपगमात्तद्वत्ताग्रहे तादृशतदत्यन्ताभावाभावस्यैव व्यवहारात्। माथुरी, ४५

[118] उपाध्यायघटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ताभावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वाभ्युपगमाच्च। माथुरी, ४५

अव्याप्यवृत्ति पदार्थ का अर्थ है - 'स्वात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यम् अव्याप्यवृत्तित्वम्' अर्थात् एक देश में संयोग भी रहे तथा उसी देश में संयोगाभाव भी लब्ध हो। तथा व्याप्यवृत्ति का अर्थ है - सम्पूर्ण देश में संयोग होना।

"कपि संयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इस अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु स्थल में अव्याप्ति दोष पूर्वोक्त लक्षण से होता है।[119] साध्य - कपिसंयोग, हेतु-एतद्वृक्षत्व। इस स्थल में शाखावच्छेदेन कपिसंयोग है, तथा मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभाव है, अतः यह अव्याप्यवृत्ति साध्यक स्थल है। साध्य-कपिसंयोग, साध्याभाव - कपिसंयोगाभाव, कपिसंयोगाभाव का मूलावच्छेदेन अधिकरण एतद्वृक्ष होगा, तन्निरूपित वृत्तिता ही एतद्वृक्षत्व में जायेगा वृत्तित्वाभाव नहीं गया अतःअव्याप्ति हुई।

तब अव्याप्ति दोष परिहार के लिए मथुरानाथ लक्षण का परिष्कार करते हैं -

"निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या निरुक्तसम्बन्धसंसर्गक निरवच्छिन्नाधिकरणता तदाश्रयावृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्।"[120]

व्याप्ति लक्षण में साध्याभाव के अधिकरण में 'निरवच्छिन्नत्व' विशेषण का उपादान किया जाता हैं। निरवच्छिन्नत्व विशेषण देने से "कपि संयोगी एतद्वृक्षत्वात्" स्थल में अव्याप्ति का वारण हो जायेगा। 'निरवच्छिन्नं यत् साध्याभावाधिकरणत्वम्' । साध्य-कपिसंयोग, साध्याभाव-कपिसंयोगाभाव, उसका सावच्छिन्न-अधिकरण- एतद्वृक्ष, निरवच्छिन्न-अधिकरण- गुणादि[121], तन्निनरूपित वृत्तिता गुणत्व में वृत्तित्वाभाव एतद्वृक्षत्व में चली जायेगी, अतः लक्षण समन्वय हो गया अव्याप्ति नहीं हुई।

तब लक्षण का स्वरूप होगा -

"साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदक धर्माव-

च्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नात्यन्ताभावनिरूपितसाध्यतावच्छेदकसम्ब न्धाव-

---

[119] तथापि कपिसंयोगो एतदक्षत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धता

वव्याप्तिरिति वाच्यम् । माथुरी, ५९

[120] माथुरी, ५९

[121] गुणे गुणानङ्गीकारः इति नियमः

च्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगित्व तदव-

च्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितनिरवच्छिन्नाधिकरणतावन्निरू पितहेतु-

तावच्छेदकदसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नवृत्तितात्ववच्छिन्नवृत्तित्वनिष्ठप्रतियो गिता-काभावो व्याप्तिः"।

साध्याभावत्वावच्छिन्न कहने का औचित्य प्रर्शन करते हैं :-

"गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभाववान् गुणत्वात्" [122] इस सद्हेतुक स्थल में साध्य- गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभाव, साध्याभाव- गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभावाभाव = गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तास्वरूप, 'विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते' न्याय से विशिष्टसत्ता और शुद्धसत्ता एक हो जायेगी, तदधिकरण गुण , तन्निरूपित वृत्तिता गुणत्व में, वृत्तित्वाभाव गुणत्व में नहीं गई, अतः अव्याप्ति हुई।

सत्ता तीन में रहती है - द्रव्य, गुण, और कर्म में, और गुणकर्मान्यत्व से विशिष्ट सत्ता द्रव्य में रहती है, तो विशिष्टसत्ता द्रव्य हो गयी। विशिष्टसत्ता द्रव्य का अभाव, द्रव्य को छोडकर सर्वत्र जायेगी। गुणत्व केवल गुणमात्र में ही रहेगा। यदि विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते न्याय से विशिष्टसत्ता और शुद्धसत्ता एक हो जायेगी, तब सत्ता का अधिकरण गुण हो जायेगा और गुण में गुणत्व रह जायेगा तब अव्याप्ति की आपत्ति होगी।

तब इस अव्याप्ति दोष वारणार्थ - तद्धर्मावच्छिन्नत्व अधिकरणत्व की विवक्षा आवश्यक है। साध्य-विशिष्टसत्ताभाव, साध्याभाव - विशिष्टसत्ताभावाभाव अर्थात् विशिष्टसत्ता, जो साध्याभावात्वच्छिन्नाधिकरणता है, तो विशिष्टसत्तात्वच्छिन्नाधिकरणता विवक्षा मात्र से उसका अधिकरण केवल मात्र द्रव्य ही होगा, गुण नहीं हो सकता तब तन्निरूपित वृत्तिता द्रव्यत्व में जायेगी वृत्तित्वाभाव गुणत्व में जायेगा लक्षण समन्वय जायेगा। अतः लक्षण में 'साध्यवत्त्वाच्छिन्नत्वाधिकरणता' निवेश करना आवश्यक है।

---

[122]गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभाववान् गुणत्वादित्यादौ सत्तात्मकसाध्याभावाधिकरणत्वस्य गुणादिवृत्तित्वेऽपि साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिताधिकरणाद्यवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः । माथुरी, ६१

साध्याभावाधिकरण में निरवच्छिन्नत्व विशेषण उपादान करने पर भी विशेष स्थल में अव्याप्ति: -

सद्धेतु स्थल "कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्" में अव्याप्ति दोष तथैव रूप से बना रहता है। साध्य - कपिसंयोगाभाव, साध्याभाव - कपिसंयोगाभावाभाव = कपिसंयोगस्वरूप, कपिसंयोग का निरवच्छिन्न-अधिकरण अप्रसिद्ध है। यदि कपिसंयोग का अधिकरण द्रव्य लेंगे तो द्रव्य में संयोग तथा संयोगाभाव दोनों प्रसिद्ध होने से सावच्छिन्न स्थल है, निरवच्छिन्न-अधिकरण नहीं है। यदि निरवच्छिन्न अधिकरण निवेश नहीं करते तो 'कपि संयोगी एतद्वृक्षत्वात्' स्थल में अव्याप्ति होगी। तब इसके उत्तर में मथुरानाथ कहते हैं - "न चैवं निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणतत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिरिति वाच्यम्, केवलान्वयिन्यभावादित्यनेन ग्रन्थकृतैवास्य दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात्।"[123] अर्थात् कपिसंयोगाभाव केवलान्वयि [124] होने से यहाँ दोष अभीष्ट है। क्योंकि गङ्गेशोपाध्याय स्वयं केवलान्वयिसाध्यकस्थल में आगे चलकर अव्याप्ति प्रदर्शित करने वाले हैं।

अब पुनः 'कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वाद्' स्थल में अव्याप्ति दोष प्रदर्शित करते हैं :-

व्याप्यवृत्तिमद् अन्योन्याभावस्य अत्यन्ताभावः।
अव्याप्यवृत्तिमद् अन्योन्याभावस्य अत्यन्ताभावः।

यहाँ दो मत देखने को मिलता है।

१ - घटत्ववृत्तिमद्-घट का अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव अर्थात् घटान्योन्याभाव - घटत्वस्वरूप, ये प्रतियोगितावच्छेदक स्वरूप होगा।

२ - संयोग (अव्याप्य) वृत्तिमद् संयोगि का अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव अर्थात् संयोग्योन्याभावाभाव - संयोगिभेदाभाव होगा। अतः अव्याप्यवृत्तिमद् के अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूप नहीं होता है, अपितु वह सप्तमपदार्थस्वरूप होता है, और सप्तमपदार्थस्वरूप व्याप्यवृत्ति ही माना जाता है।

---

[123] माथुरी, ६१

[124] सर्वत्र विद्यमानत्वं केवलान्वयित्वम्,
स्वविरोधिवृत्तिमदत्यन्ताभावाऽप्रतियोगित्वं वा।

अन्योन्याभाव[125] स्थल किसी के मत में अव्याप्यवृत्ति वाला तथा किसी के मत में व्याप्यवृत्ति वाला है। कपिसंयोगिभेद गुणत्वात् स्थल को व्याप्यवृत्ति मानने वाले के मत में अव्याप्ति होगी - साध्य-कपिसंयोगिभेद, साध्याभाव - कपिसंयोगिभेदाभाव कपिसंयोगित्व अर्थात् कपिसंयोगस्वरूप [126] क्योंकि अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव होता है वह प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूप होता है, तत्कपिसंयोगित्व का निरवच्छिन्न अधिकरण ही अप्रसिद्ध है, अतः अव्याप्ति हुई। अतः जैसे केवलान्वयि स्थल में अव्याप्ति अभिमत है वैसे यहाँ भी अव्याप्ति अभिमत है, यह नहीं कह सकते है। 'अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तित्वनियमवादिनये तस्य केवलान्वय्यनन्तर्गतत्वादिति वाच्यम् न च वाच्यम्।'

इस स्थल में अन्योन्याभाव व्याप्यवृत्ति साध्यक स्थल है तथा "कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्" अव्याप्यवृत्ति साध्यक स्थल है। कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वाद् अन्योन्याभाव को केवलान्वयि के अन्तर्गत समाहित नहीं कर सकते। अतः "कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्" अव्याप्यवृत्ति साध्यक स्थल को ही केवलान्वयि स्थल में समाहित कर सकते हैं। इस प्रकार "कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वाद्" व्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थल को केवलान्वयि स्थल में अन्तर्भाव नहीं कर सकते हैं।

तब इसके अव्याप्ति समाधान में पक्ष प्रदर्शित करते हुए कहते हैं - "अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमवादिनये अन्योन्याभावान्तरात्यन्ताभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपत्वेऽपि अव्याप्यवृत्तिमदन्योन्याभावाभावस्य व्याप्यवृत्तिस्वरूपस्याऽतिरिक्तस्याऽभ्युपगमात्। तच्चाग्रे स्फुटी भविष्यति।"[127]

अर्थात् अन्योन्याभाव को व्याप्यवृत्ति मानने वालों के मत में, दूसरे जो अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव के प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूप होने पर भी अव्याप्यवृत्तिमद् का अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव प्रतियोगिताच्छेदकस्वरूप नहीं होता है, किन्तु अतिरिक्त सप्तमदार्थस्वरूप होता है और व्याप्यवृत्ति होता है। घटभेदाभाव के घटत्वस्वरूप होने पर भी कपिसंयोगिभेदाभाव कपिसयोगित्व अर्थात् कपिसंयोगस्वरूप नहीं मानते। इसका समाधान चतुर्थ लक्षण में किया

---

[125] अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तित्वनियमवादिनये
तस्य केवलान्वय्यनन्तर्गतत्वादिति वाच्यम् । माथरी, ६१

[126] कपिसंयोगिभेदाभाव=कपिसंयोगित्व (भेदाभावः प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपो भवति।)
कपिसंयोगित्व=कपिसंयोगः
(मतुबन्ताद् विहितो भावप्रत्ययः प्रकृत्यर्थं गमयति)

[127] माथरी, ६१

जावेगा। संक्षिप्त रूप से इस तरह विवक्षित है जैसे भेद को व्याप्यवृत्ति मानने पर कपिसंयोगिभेद वृक्ष में नहीं मिलता, तथा कपिसंयोगिभेदाभाव सम्पूर्ण वृक्ष में मिलता है, किन्तु कपिसंयोग केवल शाखावच्छेदेन ही रहता है। यदि कपिसंयोगिभेदाभाव को कपिसंयोगस्वरूप मानते हैं तो मूलावच्छिन्न वृक्ष में कपिसंयोगिभेदाभाव की प्रतीति नहीं होगी, क्योंकि मूल में कपिसंयोग नहीं है। अतः कपिसंयोगिभेदाभाव कपिसंयोगस्वरूप नहीं है।

पुनः मथुरानाथ एक नवीन असद्हेतुक स्थल 'इदं वह्निमत् गगनात्' में दोष प्रदर्शित करते हैं :-

इदं वह्निमद् गगनात् - असद्हेतुक स्थल

पक्ष- इदम् पदार्थ , साध्य - वह्नि, हेतु - गगन।

साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध - संयोगसम्बन्ध, हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध - समवायसम्बन्ध

साध्यतावच्छेदकधर्म - वह्नित्व, हेतुतावच्छेदकधर्म - गगनत्व

गगन अवृत्ति पदार्थ है तथा गगनत्व गगन में स्वरूप सम्बन्ध से रहता है।[128]

साध्य-वह्नि, साध्याभाव-वह्न्याभाव, वह्न्याभाव का स्वरूपेण अधिकरण जलह्रद, तन्निरूपिता वृत्तिता जलह्रदरूपनिष्ठ, वृत्तित्वाभाव गगन में, क्योंकि गगन समवायेन कहीं नहीं रहता अवृत्ति पदार्थ होने से, अतः अतिव्याप्ति।[129]

यहाँ पूर्वपक्षी अपना सिद्धान्त मत रखते हैं कि, साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव व्याप्ति लक्षण हेतु गगन में चला गया अतः उक्त स्थल को व्याप्ति लक्षण का लक्ष्य ही स्वीकार कर लिया जाये। ऐसा पूर्वपक्षी विचार रखते हैं। और गगन हेतु में असद्धेतु का व्यवहार इसलिए कर पाते हैं क्योंकि हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से हेतु पक्ष में नहीं रहता है, जिस कारण से असद्धेतुत्व का व्यवहार दिखाई पडता है। क्योंकि सद्धेतु का लक्षण है - व्याप्तिपक्षधर्मतावत्त्वं सद्धेतुत्वम्। जहाँ गगनत्व है वहाँ वह्नित्व है, गगन इदम् पदार्थ में नहीं जाता है, पक्षधर्मता नहीं बन पाता है इसलिए असद्धेतु का व्यवहार होता है।

तब इसके समाधान में सिद्धान्ती कहते हैं - 'तत्रापि व्याप्तिभ्रमेणैवानुमितेरनुसिद्धत्वात्[130] अन्यथा धूमवान् वह्नेरित्यादेरपि लक्ष्यत्वस्य सुवचत्वात्'। अर्थात् व्याप्ति भ्रम द्वारा ही "इदं

---

[128] वह्न्याभाववति हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन गगनादेरवृत्तेः । माथुरी, ६३

[129] समवायादिना गगनादिहेतुके इदं वह्निमद् गगनादित्यादावतिव्याप्तिः, माथुरी, ६३

वह्निमत् गगनात्" स्थल में अनुमिति होती है, अतः गगन हेतु को व्याप्ति लक्षण का लक्ष्य नहीं माना जा सकता, निष्कर्षतः गगन हेतु लक्ष्य नहीं है पुनः लक्षण जाने से अतिव्याप्ति है।

'इदं द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्वात्'[131] स्थल में अव्याप्ति प्रदर्शन :-

पक्ष - द्रव्य, साध्य - द्रव्यत्व, हेतु - गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता

साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध - समवायसम्बन्ध, हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध - समवायसम्बन्ध

साध्यतावच्छेदकधर्म - द्रव्यत्वत्व, हेतुतावच्छेदकधर्म - सत्तात्व

साध्य-द्रव्यत्व, साध्याभाव-द्रव्यत्वाभाव, द्रव्यत्वाभाव का स्वरूपेण अधिकरण गुणादि, तन्निरूपित समवायेनवृत्तिता गुणत्व में, वृत्तित्वाभाव द्रव्यत्व में लक्षण समन्वय हो जायेगा किन्तु साध्य-द्रव्यत्व, साध्याभाव-द्रव्यत्वाभाव, तदधिकरण-गुण तथा कर्म, उस गुण तथा कर्म में विशिष्टसत्ता नहीं रहती है, क्योंकि स्व में स्व का भेद नहीं रहता है, विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते न्याय द्वारा । शुद्धसत्ता और विशिष्टसत्ता को एक ही मान लेने से विशिष्टसत्ता भी गुण में रह गई। वास्तविक रुप से गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता केवल द्रव्य में ही रहती है। अव्याप्ति हो गई। तथा "सत्तावान् द्रव्यत्वात्" स्थल में भी में भी अव्याप्ति प्रदर्शन करते हैं -

पक्ष - द्रव्य, साध्य - सत्ता, हेतु - द्रव्यत्व

साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध - समवायसम्बन्ध, हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध - समवायसम्बन्ध

साध्यतावच्छेदकधर्म - सत्तात्व, हेतुतावच्छेदकधर्म - द्रव्यत्वत्व

साध्य-सत्ता, साध्याभाव-सत्ताभाव, सत्ताभाव का स्वरूपेण अधिकरण सामान्यादि, तन्निरूपित समवायवासम्बन्धावच्छिन्ना वृत्तिता ही अप्रसिद्ध है, अतः अव्याप्ति दोष परिलक्षित हुआ।

पूर्वोक्त दोनों स्थल "द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात्" तथा "सत्तावान् द्रव्यत्वात्" में अव्याप्ति दोष निवारणार्थ युक्ति प्रदर्शन करते हैं — साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तिता में 'हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणतानिरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्ति ताप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्ध' से साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व का अभाव ग्रहण करना उचित है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि - घट,पटादि द्रव्य भूतल में संयोग सम्बन्ध से रहते हैं,

---

[130] माथुरी, ६३

[131] द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तादित्यादावव्याप्तिः, माथुरी, ६३

किन्तु घटप्रतियोगिकसंयोगसम्बन्ध से मात्र घट ही भूतल पर रहता है, पटादि द्रव्य नहीं रहते हैं, अतः घटप्रतियोगिकसंयोगसम्बन्ध पटादि द्रव्यों का व्यधिकरण सम्बन्ध है।[132]

जैसे वृत्तिता, प्रकारता, प्रतियोगिताधर्म स्वरूपसम्बन्ध से आधेय, प्रकार, प्रतियोगी में रहता है, परन्तु वृत्तिताप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्ध से मात्र वृत्तिता में ही रहती है न कि प्रकारतादि में।

उसी प्रकार हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिता-प्रतियोगिकस्वरूप-सम्बन्ध से हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिता में ही रहेगी, यह अन्यसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिता का व्यधिकरण सम्बन्ध है।

प्रकृत स्थल में हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिताप्रतियोगि-स्वरूप-सम्बन्ध से साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व का अभाव विवक्षित है। 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' यहाँ वह्न्यभावाधिकरण = धूमावयव, धूमावयवनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिता धूम में है, तादृश वृत्तिता का (हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिताप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्ध) संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिताप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्ध अभाव लेना है। संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिताप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्ध, तादृश धूमावयवनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिता का व्यधिकरण सम्बन्ध है, अतः तादृश सम्बन्ध से धूमावयवनिरूपितसमवायसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता कहीं भी नहीं रहेगा, अपितु तादृश वृत्तित्व का अभाव सर्वत्र रहेगा तो हेतु में भी वृत्तित्वाभाव के रहने से लक्षणसमन्वयः।

'सत्तावान् द्रव्यत्वात्'[133] स्थल में अव्याप्ति दोष का परिहार इस प्रकार से करते हैं :-

---

[132] जो पदार्थ जिस सम्बन्ध से कहीं भी नहीं रहता वह सम्बन्ध उस पदार्थ का व्यधिकरणसम्बन्ध होता है। यथा- संयोगसम्बन्ध से गुण कहीं नहीं रहता है, अतः संयोगसम्बन्ध गुण का व्यधिकरण सम्बन्ध है। जो पदार्थ कहीं भी नहीं रहता, उसका अभाव सर्वत्र रहता है, जैसे संयोग सम्बन्ध से गुण कहीं भी नहीं रहता, उसका सर्वत्र अभाव रहता है, जैसे संयोग सम्बन्ध से गुण कहीं नहीं रहता अतः 'संयोगेन गुणो नास्ति' 'संयोग सम्बन्ध से गुण नहीं है' यह अभाव (संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगताकगुणाभाव) सर्वत्र
रहता है। वैसे ही घटप्रतियोगिकसंयोग सम्बन्ध से पट कहीं नहीं रहता , अतः घटप्रतियोगिकसंयोगसम्बन्ध से पट का अभाव सर्वत्र हो गया।

[133] सत्तावान् द्रव्यत्वा दित्यादावव्याप्तिश्च सत्ताभाववति सामान्यादौ हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति । माथुरी, ६३

द्रव्यत्वात्वाच्छिन्न द्रव्यत्व का अधिकरण द्रव्य, हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न समवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयता द्रव्यत्वनिष्ठाधेयता स्वरूपसम्बन्धेन अभाव, तब सत्ताभाव का अधिकरण सामान्य में स्वरूप सम्बन्ध से सामान्यत्व मिल जायेगा, वृत्तित्वाभाव द्रव्यत्व में चला गया लक्षण समन्वय हो गया।

साध्य-सत्ता, साध्याभाव-सत्ताभाव, सत्ताभावाधिकरणतावृत्तित्वश्रय- सामान्य, स्वरूपसम्बन्ध से सामान्य में वृत्तिता सामान्यत्व, वृत्तित्वाभाव द्रव्यत्व में अतः लक्षण समन्वय हो गया।

तब लक्षण का स्वरूप इस प्रकार -

"साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदक धर्माव-

च्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यताव च्छेदक-

धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगिकत्वतदवच्छेदकत्वान्यत रावच्छे-

दकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितनिरवच्छिन्नाधिकरणतावन्निरूपितहेतुतावच्छेदकस म्बन्धाव-च्छिन्नवृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नवृत्तितात्वच्छिन्नवृत्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाऽभावो व्याप्तिः।"

आधेयता में दो विशेषण -

१- हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेत्वधिकरणतानिरूपितत्व तथा

२- हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयताप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नत्व

इन दोनों का प्रयोजन प्रदर्शन इस प्रकार से किया गया है-

साध्य-द्रव्यत्व, साध्याभाव-द्रव्यत्वाभाव, तदधिकरण गुण में वृत्ति 'विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते न्यायः' से विशिष्टसत्ता भी गुण में रहने से अव्याप्ति।

अव्याप्ति परिहार के लिये हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नत्व विशेषण आधेयता में देना आवश्यक है।

साध्य-द्रव्यत्व, साध्याभाव-द्रव्यत्वाभाव, विशिष्टद्रव्यत्वावच्छिन्न तो केवल द्रव्यमात्र ही होगा , तत्प्रतियोगिक अधिकरणता द्रव्य ही होगा, वृत्तित्वाभाव नहीं जाने से अव्याप्ति नहीं हुई। अतः हेतुतावच्छेदकवृत्तित्वाभाव होना चाहिए।

अतः मथुरानाथ के अनुसार लक्षण स्वरूप :-

"हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यसामानाधिरणत्वे सति हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयता प्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिकाभा वत्वाव-च्छिन्न साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक - साध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगित्वतदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धावच्छि न्नाधिक-रणतावन्निरूपित वृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्न वृत्तितात्वावच्छिन्नवृत्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावो व्याप्तिः।"

कुछ आचार्यों के मत में "वह्निमान् धूमात्" स्थल में साध्याभावाधिकरणताश्रय अर्थात् वह्न्यभावाधिकरणताश्रय जलह्रद में संयोगसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न अर्थात् धूमत्वावच्छिन्न आधेयतानिरूपित अधिकरणता अवर्त्तमान है, अतः तद्धर्मत्व के धूम हेतु में विद्यमान होने से लक्षणसमन्वय हो जाता है।

केचित्तु मत के अनुसार लक्षण का स्वरूप :-

"साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न साध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक - साध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगित्वतदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धावच्छि न्न-आधेयतानिरूपितनिरवच्छिन्नाधिकरणताश्रयवृत्ति - हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नयद्धर्मावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणता सामन्यं तद्धर्मावत्त्वं व्याप्तिः।"

अन्य नैयायिक आचार्यों के मत में हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से अवच्छिन्न हेतुतावच्छेदकधर्म से अवच्छिन्न, स्व अर्थात् हेतु की अधिकरणता के आश्रय में वृत्ति जो निरवच्छिन्नाधिकरणत्व उसमें अवृत्ति, पूर्वपरिष्कृत साध्याभावत्व विशिष्ट से निरूपित पूर्वोक्त सम्बन्ध से अवच्छिन्न अधिकरणतात्वकत्व ही व्याप्ति का लक्षण है, ऐसा विशेषण-विशेष्यभाव के व्यत्यास अर्थात् वैपरीत्य में इन आचार्यों का तात्पर्य है। इस लक्षण में स्व पद से हेतु का ग्रहण करना है। इस

प्रकार “कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्” तथा “ कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात्” इत्यादि सद्धेतु स्थलों में अव्याप्ति दोष नहीं होता है।[134]

अन्ये तु मत के अनुसार लक्षण का स्वरूप :-

“हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नस्वनिष्ठाधेयतानिरूपिताधिकरण ताश्र-यवृत्तियन्निरवच्छिन्नाधिकरणतातदवृत्ति-
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदका वच्छिन्न-
साध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेद का-
वच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगित्वतदवच्छेदकत्वान्यतराव च्छेदक-सम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणतात्वं व्याप्तिः।”

आचार्यों का मत विशेष :-

दीधिति तथा जागदीशी का मत अभिप्राय :-

प्रथम लक्षण तथा द्वितीय लक्षण :-

व्याप्तिपञ्चक ग्रन्थ की जो जागदीशी व्याख्या है वह दीधिति ग्रन्थ के ऊपर व्याख्या की गई है। अर्थात् “ननु ….. का व्याप्ति”। इस प्रकार जो चिन्तामणि ग्रन्थ है उस चिन्तामणि ग्रन्थ के ऊपर रघुनाथशिरोमणि ने दीधिति व्याख्या लिखी । दीधिति व्याख्या के ऊपर जगदीशतर्कालङ्कार जागदीशीव्याख्या लिखी है। मणि ग्रन्थ की व्याख्यानों में दीधितिकार कहते हैं - अनुमानप्रमाण्य परीक्षा में कारणीभूत जो व्याप्तिग्रहोपाय है उसका कारण व्याप्ति, ऐसी व्याप्ति के स्वरूप को प्रतिपादन करने के लिए गङ्गेश ने ननु इत्यादि ग्रन्थ का अवतरण करते हैं।

जगदीश दीधिति की व्याख्या में कहते हैं व्याप्ति ज्ञान के बिना व्याप्तिग्रहोपाय का ज्ञान असम्भव हैं। अतः व्याप्तिज्ञान के विषय अथवा विशेषणीभूत जो व्याप्ति है वह व्याप्ति

---

[134] पञ्चलक्षणी, माथुरी, व्याख्याकार,पीयूषकान्त दीक्षित, पृ.१०७

क्या है?ऐसी व्याख्या दीधिति ग्रन्थ के स्वारस्य को प्रदर्शित करते हैं। मथुरानाथतर्कवागीश अनुमानप्रमाण्य के निरूपण के पश्चात् व्याप्ति निरूपण में जो सङ्गति सापेक्षित है एवं प्रथम लक्षण में समास प्रकार तथा प्रथम लक्षण का जो-जो परिष्कार सापेक्षित है उसका सम्पूर्ण विवेचन किया गया है। इसीलिये जगदीश तर्कालङ्कार या रघुनाथशिरोमणि ने प्रथम लक्षण के ऊपर कोई विशेष व्याख्या नहीं करते हैं।

प्रथमलक्षण के परित्याग में क्या बीज है? ऐसी आशङ्का को हृदय में रखते हुये 'अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु' में प्रथम लक्षण की अव्याप्ति होगी, क्योंकि कपिसंयोगाभाव के अधिकरण मूलावच्छिन्न एतद्वृक्ष तन्निरूपितवृत्तिता ही एतद्वृक्षत्व में विद्यमान होगी, उक्त हेतु में तादृश वृत्तित्वाभाव रूप व्याप्तिलक्षण के प्रसक्ति न होने से अव्याप्ति होती है। उस अव्याप्ति के परिहारार्थ मणिकार ने द्वितीय लक्षण का उपस्थापन किया है।

"साध्याभाववदवृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतावव्याप्तिमाशङ्क्यमाह" द्वितीय लक्षण समास के सन्दर्भ में मथुरानाथ ने नव्य के सम्मत जो समास प्रदर्शित किया है, उसी को ही दीधितिकार ने भी उपस्थापन किया है। द्वितीय लक्षण की विवृत्ति में जिस रूप से

जिस सम्बन्ध साध्यता गृहीत है उसी सम्बन्ध से साध्याभाव का ग्रहण करना चाहिए अन्यथा व्याप्यवृत्ति साध्यकस्थल में अर्थात् "द्रव्यत्वान् पृथिवीत्वात्" इत्यादि सद्धेतु में विशिष्टभाव को - लेकर अर्थात् जलत्वविशिष्टद्रव्यत्वाभाव में अव्याप्ति होगी।

मूल में दीधितिकार ने अव्याप्यवृत्तिसाध्यक सद्धेतु स्थल में अव्याप्ति परिहार करने के लिये "साध्यवद्भिन्न" पद का उपपादन किया गया है। उसमें भी सद्धेतु शब्द का प्रयोग दीधितिकार ने क्यों किया? इसके समाधान में यह कहा जा सकता है -"कपिसंयोगी आकाशात्" यहाँ पर कपिसंयोगाभाव के अधिकरण में आकाश के अवृत्ति होने पर अव्याप्ति नहीं होती है। परन्तु अव्याप्यवृत्तिसाध्यक कहने की क्या आवश्यकता थी । इसीलिये दीधितिकार ने सद्धेतु पद का उपपादन किया है। अर्थात् वृत्तिमद् हेतुकस्थलीय सद्धेतु में अव्याप्ति परिहार करने के लिये द्वितीय लक्षण का उद्भावन किया गया है। "साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान्" इस प्रकार समास करने से जो साध्याभाव पद की व्यर्थतापत्ति आयेगी।

इस प्रकार जगदीश का जो कथन है मथुरानाथ का भी ठीक उसी प्रकार व्याख्यान है। मथुरानाथ एवं जगदीश के विवेचन शैली में भेद दिखाई पडता है, किन्तु वास्तविक पदार्थ निर्वचन में कोई भिन्नता द्रष्ट्व्य नहीं है।

साध्याभाव एवं साध्याभाववत् इत्यादि पदार्थों का विचार मथुरानाथ व्याख्या की तरह ही समीचीन है।

गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण :-

मणिकार ने जो व्याप्तिपञ्चक प्रकरण का प्रतिपादन किया है। उस पर रघुनाथशिरोमणि ने दीधिति व्याख्या की उस दीधिति के ऊपर गदाधरभट्टाचार्य ने गादाधरीव्याख्या का निर्माण किया है। "ननु अनुमिति हेतु व्याप्तिज्ञाने का व्याप्ति" इस पंक्ति के विवरण में दीधितिकार ने व्याप्तिग्रहोपाय के निदानभूत जो व्याप्ति है वह व्याप्ति क्या है? इसके परिप्रेक्ष्य में ननु इत्यादि शब्द का अवतरण मणिकार ने किया है। उस पर गदाधर का कथन है कि अनुमानप्रामाण्य के उपपादन के रूप में व्याप्तिग्रहोपाय का उपपादन करना उचित प्रतीत होता है। उसका परित्याग करके व्याप्ति स्वभाव का निरूपण करना समुचित प्रतीत नहीं होता है। इस प्रकार आशंका के परिहार करने के लिये व्याप्तिग्रहोपाय के प्रतिपादनानुकूल बीज को प्रदर्शन करने के लिये व्याप्ति ननु इत्यादि ग्रन्थ का अवतरण किया गया है।

मूल में दीधितिकार ने **"समारब्धानुमानप्रामाण्यपरीक्षाकारणीभूतव्याप्तिग्रहोपायप्रतिपादननिदानं व्याप्तिस्वरूपनिरूपणमारभते, 'ननु' इत्यादिना।"** वाक्यों का उल्लेख किया है। यहाँ पर समझना चाहिये समारब्ध शब्द परीक्षा का विशेषण है। परीक्षा परमत का निराकरणपूर्वक स्वमत का व्यवस्थापन है। व्याप्तिग्रहोपाय का अग्रिम प्रकरण में विचार किया गया है। किन्तु व्याप्तिग्रहोपाय के निदानभूत जो व्याप्ति है उसका परिज्ञान जब तक नहीं होगा तब तक व्याप्ति ग्रहोपाय का निरूपण नहीं किया जा सकता । इस प्रकार आशय को हृदय में रखते हुये दीधितिकार ने समारब्ध इत्यादि वाक्यों के द्वारा जो अभिधान किया वह सङ्गत है। ऐसा गदाधर का चिन्तन है।

"न तावद् अव्यभिचरितत्वम्" इस प्रकार मणिकार के मूलवाक्यों को ननु इत्यादि घटित प्रश्न[135] वाक्य के समाधान में यह वाक्य प्रतिपादित किया है। अर्थात् अव्यभिचार पदार्थ अनुमिति जनक ज्ञान विषय नहीं है, क्योंकि यह साध्याभाववदवृत्तित्वादिरूप नहीं है। केवलान्वयि स्थल में उक्त स्थलों के व्यभिचरित होने के कारण वे लक्षण अव्यभिचरितत्व शब्द का प्रतिपाद्य नहीं है। 'न तावद्' यहाँ नञ् अर्थ सामान्याभाव का बोधक है तथा 'तद्धि न' में नञर्थ विशेषाभाव का बोधक है। अर्थात् विशेषाभाव समुदाय सामान्याभाव के कारण होते हैं। जिस पर कोई विवाद नहीं है, ऐसा मथुरानाथ की तरह गदाधर का भी कथन है।[136]

---

[135] मूले 'न तावदव्यभिचरितत्वम्' इति।' 'व्याप्तिः' इति प्रश्नस्थमनुषज्यते, तथा चाव्यभिचारपदार्थे नानुमितिजनकज्ञानविषय इत्यर्थः। व्याप्तिसप्तकसार, पृ.-१६४

[136] विशेषाभावकूटस्य सामान्याभावव्याप्यताया अविवादात्। गादाधरी, व्याप्तिसप्तकसार।

केवलान्वयिन्यभावात् इस प्रकार ग्रन्थ का विवेचन करते हुये गदाधरभट्टाचार्य ने भी पाँचों लक्षण की केवलान्वयि स्थल में अव्याप्ति प्रदर्शन करते हुये अव्यभिचरितत्व शब्द से प्रतिपाद्य पाँचों व्याप्तिलक्षण का परित्याग किया है। किन्तु धातव्य है मथुरानाथतर्कवागीश 'साध्याभाववदवृत्तित्वम्' लक्षण को लेकर जिस प्रकार व्याख्या की है जगदीश और गदाधर ने उस प्रकार अपने मत विशेष को प्रस्तुत नहीं किया, उससे लगता है मणिग्रन्थ के ऊपर प्रथमलक्षण का जो विचार मथुरानाथ ने किया उस पर कोई अतिरिक्त विचार करने का अवकाश ही नहीं है। इसीलिए जगदीशतर्कालङ्कार अथवा गदाधरभट्टाचार्य दोनों ने प्रथम लक्षण पर कोई विचार व्यक्त नहीं किये हैं।

कालीशङ्कर का अभिमत:-

मणिकार ने पूर्वपक्ष व्याप्ति के रूप में "साध्याभाववदवृत्तित्वम्" इत्यादि पाँचों लक्षण का उद्भावन किया है। उसके विचार प्रसंग में जिस प्रकार जगदीशतर्कालंकार और गदाधरभट्टाचार्य ने प्रथम लक्षण का कोई विचार नहीं किया उसी प्रकार जागदीशी के क्रोडपत्र में भी कालीशंकर ने भी प्रथम लक्षण के सन्दर्भ में कोई विचार प्रस्तुत नहीं करते हैं।

द्वितीय अध्याय
व्याप्ति का द्वितीयलक्षण

द्वितीय लक्षण के उद्भावन में बीज :-

प्रथम लक्षण 'साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव व्याप्ति' के अनुसार व्याप्यवृत्ति साध्यक सद्धेतुक स्थल में लक्षण समन्वय हो जाने पर भी अव्याप्यवृत्तिसाध्यक सद्धेतुक स्थल "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" यहाँ एतद्वृक्षत्व हेतु में अव्याप्ति दोष सदैव बना ही रहता है। जिस कारण से प्रथम लक्षण का परित्याग करके द्वितीय लक्षण का उद्भावन किया गया है। द्वितीय लक्षण इस प्रकार है - "साध्यावद्भिन्न साध्याभाववद्वृत्तित्वम्"।

इस लक्षण में समास निम्न रीति से किया जाता है। साध्य अस्ति यत्र सः साध्यवान् , साध्यवतः भिन्नः साध्यवद्भिन्नः इति पञ्चमीतत्पुरूष समास। साध्यस्य अभावः इति साध्याभावः, अस्ति यत्र इति साध्याभाववान् । साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभाववान् - साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववान् इति कर्मधारयसमासः। तथा प्रकारान्तर से भी समास दिखाया गया है - साध्यवद्भिन्न साध्याभाववतः

न वृत्तिर्यत्र इति साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववद्वृत्तिः इति त्रिपदव्यधिकरण बहुव्रीहिसमासः। तस्य भावः इति साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववद्वृत्तित्वम्।

अतः साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः। "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इस स्थल में साध्य - वह्नि, साध्यवद् - वह्निमद् = पर्वत, तद्भिन्न - जलह्रद, यः साध्य - वह्नि, साध्याभाव - वह्न्याभाव, साध्याभाववान् - वह्न्याभाववान् = जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादि में वृत्तित्वाभाव धूम में लक्षण समन्वय हो गया ।

प्रथमलक्षण के अनुसार "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" अव्याप्यवत्ति साध्यक स्थल में अव्याप्ति हो रही थी तब गङ्गेशोपाध्याय द्वारा द्वितीय लक्षण[137] का उद्भावन किया गया है। अब इस द्वितीय लक्षण में साध्यवद्भिन्न विशेषण साध्याभाववान् पद में देते हैं। जिससे अव्याप्ति वारण हो सके । पूर्व में कपिसंयोगाभाव- साध्याभाव का अधिकरण एतद्वृक्ष ही हो रहा था तथा उसी में एतद्वृक्षत्व हेतु भी रह रहा था, तब साध्यवद्भिन्न विशेषण उपादान से साध्यवद् वृक्ष होने से तद्भिन्न जो साध्याभाववान् वह गुणादि होंगे तन्निरूपित वृत्तित्व गुणत्वादिनिष्ठ, वृत्तित्वाभाव एतद्वृक्ष में रहने से अव्याप्ति दोष का वारण हो जायेगा। अतः जो साध्याधिकरण भेद का अधिकरण स्वरूप जो साध्याभाव के अधिकरणता का आश्रय तन्निरूपित वृत्तित्व का अभाव ही अव्यभिचरितत्व स्वरूप व्याप्ति है।

साध्य - कपिसंयोग, साध्यवद् - वृक्ष, तद्भिन्न - गुणादि, यः साध्याभाववान् - गुणादि, तन्निरूपितवृत्तित्व - गुणत्वनिष्ठा, वृत्तित्वाभाव - एतद्वृक्षत्व में अतः लक्षण समन्वय हो गया। साध्यवद् भेद के अधिकरण से अभिन्न जो साध्याभावाधिकरणताश्रय तन्निरूपित हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभाव ही व्याप्ति है। 'साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः' यहाँ कर्मधारय समास द्वारा व्याप्ति का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। इस लक्षण में साध्यवद्भिन्नत्व पद साध्याभावाधिकरणत्व में विशेषण है।

यह उपर्युक्त मत प्राचीनों का है।[138] इस मत का मथुरानाथतर्कवागीश खण्डन करते हुए कहते हैं कि - "तदसत् । साध्याभाववदित्यस्य व्यर्थातापत्तेः, साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्यस्यैव सम्यक्त्वात्।" [139]अर्थात् प्राचीनाचार्यों का मत सम्यक् नहीं है। ऐसा मत स्वीकार करने पर

---

[137] कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकाऽव्याप्तिवारणाय साध्यवद्भिन्नेति साध्याभाववतो विशेषणमिति प्राञ्चः । माथुरी, ८४

[138] साध्यवद्भिन्नेति साध्याभाववतो विशेषणमिति प्राञ्चः । माथुरी,८४

[139] माथुरी, ८५

साध्याभाववत् की वैयर्थ्यापत्ति हो जायेगी। क्योंकि केवलमात्र साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व ही लक्षण करने से अव्याप्यवृत्ति साध्यक सद्धेतु स्थल में अव्याप्ति दोष का वारण हो जायेगा तब साध्याभाववत् पद देने की क्या आवश्यकता है।

मथुरानाथ अपने मत के प्रदर्शन में कहते हैं - "नव्यास्तु साध्यवद्भिन्ने साध्याभावः साध्यवद्भिन्नसाध्याभावस्तद्वदवृत्तित्वमिति सप्तमीतत्पुरुषोत्तरं मतुप्प्रत्ययः, तथा च साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावस्तद्वदवृत्तित्वमर्थः"।[140] अर्थात् नव्यनैयायिकों के मतानुसार पूर्व में जो कर्मधारयसमास द्वारा लक्षण का स्वरूप प्रदर्शित किया गया था वह कर्मधारय समास न करके सप्तमी तत्पुरुष समास करके मतुप् प्रत्यय किया जाये, यह ही उचित प्रतीत होता है। 'साध्यवद्भिन्ने साध्याभावः साध्यवद्भिन्नसाध्याभावः तद्वद् अवृत्तित्वम्।' यहाँ सप्तमी तत्पुरुष के अनन्तर मतुप् प्रत्यय किया गया है। "साध्यवद्भिन्ने" यहाँ पर सप्तमी विभक्ति का अर्थ - वृत्तित्वम् , तथा साध्यवद् भिन्नवृत्ति जो साध्याभाव तदधिकरण निरूपित वृत्तित्व का अभाव ही व्याप्ति का मुख्य स्वरूप है। तब लक्षण का स्वरूप होगा -

"साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावस्तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

सद्धेतुकस्थल "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" स्थल में साध्य - वह्नि, साध्यवत् - पर्वत, तद्भिन्न - जलह्रद, तदवृत्ति साध्याभाव =वह्न्याभाव, तद्वत् - जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता - मीनादिनिष्ठा , वृत्तित्वाभाव - धूम में होने से लक्षण समन्वय कोई दोष नहीं हुआ।

असद्धेतुक "धूमवान् वह्नेः" स्थल में भी अतिव्याप्ति दोष नहीं होगा। साध्य - धूम, साध्यवत् - पर्वत, साध्यवद्भिन्न - अयोगोलक, तद्वृत्तिर्यः साध्याभाव - धूमाभाव, तदधिकरण तद्वत् - अयोगोलक, तन्निरूपित वृत्तिता ही वह्नि में है। अतः अतिव्याप्ति नहीं हुई।

लक्षण में आये साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व पद का प्रयोजन क्या है? -

प्रयोजन की सार्थकता इस रूप में व्यक्त करते हैं - "साध्यवद्भिन्नवृत्तीत्यनुक्तौ संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः, संयोगाभाववति द्रव्यत्वस्य वृत्तेः।"[141] साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व पद का लक्षण में उपादान न करके केवलमात्र 'साध्याभाववन्निरूपितवृत्तित्वाभाव' कहने से "संयोगी

---

[140] माथुरी, ८८

[141] माथुरी, ८९

द्रव्यत्वात्" सद्हेतुक स्थल में अव्याप्ति दोष की आपत्ति होने लगेगी। यथा - साध्य-संयोग, साध्याभाववत्-संयोगाभाववत्=द्रव्य, तन्निरूपित वृत्तिता द्रव्यत्व में ही है, अतः अव्याप्ति हुई। यहाँ संयोग अव्याप्यवृत्ति से किञ्चिद् देशावच्छेदेन द्रव्य में संयोग भी रहता है तथा किञ्चिद् देशावच्छेदेन द्रव्य में संयोगाभाव भी रहता है अतः संयोगाभावाधिकरण द्रव्य तन्निरूपित वृत्तिता ही द्रव्यत्व में गई अतः अव्याप्ति।

तब अव्याप्ति दोष वारण के लिए 'साध्यवद्भिन्नत्व' पद का लक्षण में निवेश करते हैं। तब साध्य-संयोग, साध्यवत् - संयोगवद्, तद्भिन्न- गुणादि, तद्वृत्तिर्यः साध्याभाव - संयोगाभाव, तदधिकरण संयोगाभावाधिकरण गुण ही होगा तन्निरूपित वृत्तिता गुणत्वनिष्ठा, वृत्तित्वाभाव द्रव्यत्व में रहने से लक्षण समन्वय हो गया अव्याप्ति नहीं हुई।

यहाँ जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि - संयोगवद्भिन्न गुणादि में तद्वृत्तिर्यः साध्याभाव-संयोगाभाव, तदधिकरण द्रव्य भी हो सकता है तो और उसमें द्रव्यत्व में रहने से अव्याप्ति भी होगी तो वारण कैसे होगा? इसके उत्तर में कहते हैं - 'अधिकरणभेदेनाऽभावभेदात् तद्वदवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः।' अर्थात् अधिकरण के भेद से अभाव भी भिन्न माना गया है।[142] गुण में वृत्ति संयोगाभाव का अधिकरण

गुण होगा, द्रव्य नहीं होगा, अतः नाव्याप्ति।

साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वम् इतना ही कहते हैं तो साध्याभाववत् पद का उपादान नहीं करते हैं तब भी लक्षण समन्वय हो ही जायेगा। साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वम् कहने से पञ्चमलक्षण हो जायेगा जो कि आगे जाकर पञ्चमलक्षण गङ्गेशोपाध्याय स्वंय कहने वाले हैं। अतः साध्याभाव पद का वैयर्थ्य कहना ठीक नहीं है।

साध्याभावपद का प्रयोजन स्पष्ट करते हैं : -

तब लक्षण स्वरूप है - साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः तद्वन्निरूपित अभावः । ऐसा कहने से "वह्निमान् धूमात्" स्थल में असम्भव लगेगा। साध्य - वह्नि, साध्यवद्भिन्न - जलह्रद, तादृश जलह्रद वृत्तिर्यः अभावः - द्रव्यत्व, तदधिकरण पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता ही हेतु में अतः असम्भव दोष ।

अतः साध्याभाव पद का उपादान करना आवश्यक है। तब साध्यभाव से तादृश जलह्रद वृत्तिर्यः अभावः से वह्न्याभाव का ग्रहण होगा, तदधिकरण जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता मीनदि में वृत्तित्वाभाव हेतु में होने से अव्याप्ति नहीं हुई।

---

[142] भावरूपाऽभावस्य चाऽधिकरणभेदेन भेदाभावात् । माथुरी, ९०

साध्य पद का प्रयोजन स्पष्ट करते हैं :-

साध्यपद न देने से केवल अभावः कहने से - साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः अभावः तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावः। इतना मात्र कहते हैं तो भी दोष बना रहेगा । साध्य-वह्नि, साध्यमद्भिन्न- जलह्रद, तादृश जलह्रद वृत्तिर्यः अभावः करके द्रव्यत्वाभावाभाव द्रव्यत्व स्वरूप ले लेगें , तदधिकरण पर्वत , तन्निरूपितवृत्तिता धूम रहने से असम्भव दोष पुनः हो गया।

अतः असम्भव वारण के लिये साध्यपद का उपादान करना आवश्यक है। यहाँ अधिकरणभेदेन अभावभिद्यते, से जलह्रद वृत्तिर्यः अभावः द्रव्यत्वाभावाभाव का अधिकरण जलह्रद नहीं होगा क्योंकि अभाव दो प्रकार का होता है। १ अभाव अर्थात् द्रव्यत्वाभाव, २ अभावाभाव अर्थात् भावस्वरूप अभाव द्रव्यत्वाभावाभाव द्रव्यत्वस्वरूप। इस प्रकार अधिकरण के भेद से अभाव के भिन्न होने पर भी भावस्वरूप अभाव अधिकरण भेद से भिन्न-भिन्न नहीं होता है। अतः साध्य पद देना आवश्यक है।

अब पुनः एक स्थल में दोषोद्भावन करते हैं -

“घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वाद्” सद्धेतुक स्थल में अव्याप्ति प्रदर्शन करते हैं।[143] यहाँ साध्य- घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाव, हेतु - गगनत्व है। स्वरूप सम्बन्ध से गगनत्व गगन में रहेगा। घटाकाशसंयोग घट और आकाश में रहेगा, और घटत्व घट में रहेगा। घटाधिकरणदेशावच्छेदेन आकाश में घटाकाशसंयोग रहेगा, तथा घटानधिकरणदेशावच्छेदेन आकाश में घटाकाशसंयोगाभाव रहेगा। अतः घटत्व और घटाकाशसंयोग का अभाव आकाश में रह जायेगा।

साध्य -घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाव, साध्यवद् - आकाश, तद्भिन्न- घट, तादृशवृत्तिर्यः अभावः करके घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभावाभाव = घटाकाशसंयोग, तदधिकरण -गगन, तन्निरूपितवृत्तिता गगनत्व में अतः अव्याप्ति ।

यदि इस स्थल में अव्याप्ति परिहार के लिए - “साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टो यः साध्याभावः तद्वन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः ऐसा लक्षण करते हैं तो साध्यवद्भिन्न - घट, तादृशवृत्तिर्यः अभावः करके घटवृत्तित्वविशिष्ट घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभावाभाव घटाकाशसंयोग का

---

[143] तथापि घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वाद् इत्यादौ घटानधिकरणदेशावच्छेदेन घटाकाशसंयोगाभावस्य गगने सत्त्वात्सद्धेतुतया ऽव्याप्तिः। माथुरी, ९१

अधिकरण घट ही होगा, आकाश नहीं, तन्निरूपित वृत्तिता घटत्व में वृत्तित्वाभाव गगनत्व में अतः लक्षण समन्वय हो गया। यदि इस प्रकार से उक्त लक्षण स्वीकार करते हैं तब 'साध्याभाव' पद की वैयर्थ्यापत्ति हो रही है। 'साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टो यः तद्वन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः' लक्षण स्वीकार करने पर वह्निमान् धूमात् स्थल में वह्निमद्भिन्न - जलह्रद वृत्तित्वविशिष्ट-द्रव्यत्व का अधिकरण जलह्रद ही होगा पर्वत नहीं , इस प्रकार 'साध्याभाव' पद के बिना भी लक्षण समन्वय हो जाने से 'साध्याभाव' पद कि व्यर्थता सिद्ध हो जाती है। अतः हमें लक्षण में साध्याभाव पद की व्यर्थता इष्ट नहीं है, तब लक्षण में 'वृत्तित्वविशिष्ट' यह विशेषण देना उचित नहीं है, और वृत्तित्वविशिष्ट न कहने से "घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वाद्" स्थल में अव्याप्ति दोष बना ही रहेगा।

तब मथुरानाथ अव्याप्ति दोष परिहार के समाधान में कहते हैं -

"न अभावाभावस्यातिरिक्तत्वमतेनैतल्लक्षणकरणात्। तथा चाधिकरणभेदेनाभावभेदात् साध्यवद्भिन्ने घटे वर्तमानस्य साध्याभावस्य (प्रतियोगिव्यधिकरणस्य) प्रतियोगिमति गगनेऽसत्त्वादव्याप्तेरभावात्"।[144] अर्थात् अत्यन्ताभाव का अत्यन्ताभाव प्रतियोगिस्वरूप होता है, तथा अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव प्रतियोगितावच्छेदक स्वरूप होता है, किन्तु प्रतियोग्यादि स्वरूप न मानकर अतिरिक्त सप्तमपदार्थ स्वरूप होता है, ऐसा प्रारम्भ में स्वीकार किया गया था। ऐसा मानने पर साध्य -घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाव, साध्यवत् - आकाश, साध्यवद्भिन्न- घट, तादृशघटवृत्तिर्यः साध्याभावः घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभावाभाव घटाकाशसंयोगस्वरूप न होकर सप्तमपदार्थ अभाव स्वरूप होगा, तादृश साध्याभाव का अधिकरण घट तन्निरूपितवृत्तिता घटत्व में, वृत्तित्वभाव गगनत्व में अतः लक्षण समन्वय हो गया।

लक्षण में साध्यपद को लेकर शंका करना उचित नहीं है, क्योंकि साध्यपद का लक्षण में उपादान न करने से 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' स्थल में साध्यवद्भिन्न वह्निमद्भिन्न जलह्रद में वृत्ति द्रव्यत्वस्वरूप अभाव का अधिकरण पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता धूम(हेतु) में रहने से असम्भव दोष हो जाता है। तब दोष निवारणार्थ साध्यपद का उपादान करना आवश्यक है। परन्तु अभावाभाव को अतिरिक्त सप्तमपदार्थ स्वरूप माना गया है। तब द्रव्यत्व के अभाव स्वरूप न होने से साध्यवद्भिन्न वह्निमद्भिन्न जलह्रद में वृत्ति अभाव घटाभावादि होंगे, घटाभाव का

---

[144] माथुरी, ९२

अधिकरण पर्वत नहीं होगा अपितु जलह्रद ही होगा तन्निरूपित वृत्तिता मीनादि में वृत्तित्वाभाव हेतु (धूम) में होने से असम्भव दोष का समाधान हो जाता है। बिना साध्यपद के ही लक्षण का समन्वय हो जाता है। अतः अभावाभाव को अतिरिक्त पदार्थ मानने पर साध्य पद के व्यर्थथता की आपत्ति आ जायेगी।

तब इसके निवारणार्थ कहते हैं - "यत्र प्रतियोसमानाधिकरणत्व-प्रतियोगिव्यधिकरणत्व लक्षणविरुद्धधर्माध्यासस्तत्रैवाऽधिकरणभेदेनाऽभावभेदाभ्युपगमो न तु सर्वत्र, तथा च साध्यवद्भिन्नवृत्तिघटाभावादेर्हेतुमत्यपि सत्त्वादसम्भववारणाय साध्यपदोपादानात्।"

अर्थात् जिस अभाव में प्रतियोगिसमानाधिकरणत्व और प्रतियोगिव्यधिकरणत्व दोनों का आरोप होता है वही अभाव अधिकरण के भेद से भिन्न-भिन्न होता है न कि सभी अभाव । तब "घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वाद्" स्थल में घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभावाभावस्वरूप साध्याभाव में गगनावच्छेदेन प्रतियोगिसमानाधिकरणत्व और घटावच्छेदेन प्रतियोगिव्यधिकरणत्व दोनों धर्मों का आरोप होने से साध्यवद्भिन्न घट में वृत्ति तादृश साध्याभाव का अधिकरण घट ही होगा, तन्निरूपित वृत्तिता घट में वृत्तित्वाभाव धूम (हेतु) में चला गया, अतः लक्षण समन्वय होने से कोई दोष नहीं हुआ। एवं "वह्निमान् धूमात्" स्थल में असम्भव दोष वारण के लिये साध्य पद का उपादान करना निश्चित है।

गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण :-

द्वितीय लक्षण के उद्भावन में दीधितिकार ने जो कारण प्रदर्शित किया है ऐसा कारण गदाधर को भी अभिमत है क्योंकि गदाधरभट्टाचार्य ने दीधिति ग्रन्थ के विचार पर व्याख्या लिखी है। "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इत्यादि स्थलों में अव्याप्ति परिहारार्थ साध्यवत्-भिन्नत्व को साध्याभाव में विशेषण के रूप में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार की व्युत्पत्ति दीधितिकार ने जो प्रदर्शित किया है, किन्तु गदाधर ने एतद्वृक्षत्वात् हेतु के स्थान पर एतत्व हेतु का प्रदर्शन किया है। 'साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान्' इस प्रकार कर्मधारय समास से अपदार्थ प्रतीत होने से साध्याभाव पद भी वैयर्थ्य को प्राप्त होगा। इसलिए गदाधरभट्टाचार्य ने सप्तमी तत्पुरुष का आश्रय लिया है। अर्थात् 'साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभावः' तब लक्षण का स्वरूप होगा - "साध्यवद्भिन्न वृत्तिर्यः साध्याभावः तद्वदवृत्तित्वम्"।[145] इस प्रकार के व्यत्पत्ति से यह प्रतीत होता

[145] तथा च साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावस्तद्वदवृत्तित्वमर्थः, व्याप्तिसप्तकसार, १८०

है मथुरानाथ ने प्राचीन नैयायिक के अभिमत कर्मधारय समास परित्याग करने में जो बीज प्रदर्शित किया है गदाधर ने भी उसी अनुरूप प्राचीनमत का परित्याग करके नव्यमत का उद्भावन किया है।

साध्यवद्भिन्न साध्याभाव इस प्रकार लक्षण में साध्यपद का उपादान करने पर "वह्निमान् धूमात्" इस स्थल में वह्निमत् भिन्न ह्रदादि में वृत्ति गगनाद्यभाव को लेकर जो अव्याप्ति प्रसक्ति होगी उसके वारणार्थ साध्यभाव में साध्यपद का उपादान करना परम आवश्यक है।[146] साध्याभाव पद को यथाश्रुत स्वरूप उपादान किया जाये तब "वह्निमान् धूमात्" स्थल में वह्निमत् भिन्न ह्रदादि में महानसीय वह्न्याभाव भी गृहीत किया जा सकता है। तादृश महानसीयभावाधिकरण पर्वत में धूम के विद्यमान होने पर अव्याप्ति दोष होगा उसके वारणार्थ साध्याभाव को साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव के रूप में ग्रहण करना आवश्यक है। ऐसा करने पर शुद्ध वह्न्याभाव को लेकर अव्याप्ति दोष नहीं होगी क्योंकि महानसीयवह्न्याभाव के अधिकरण यद्यपि पर्वत होते हैं तथापि वह्नित्वावच्छिन्नवह्न्याभाव के अधिकरण कदापि पर्वत नहीं सकेगें।[147] साध्याभावीय प्रतियोगिता को भी साध्यताव्च्छेदकसम्बन्ध से ग्रहण करना आवश्यक है अन्यथा ह्रदादि में समवायसम्बन्धेन वह्न्याभाव को लेकर असम्भव की प्रसक्ति होगी। अतः इस कारण से गदाधर ने साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से प्रतियोगिता का ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार व्याख्या प्रदर्शित की है।[148] "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इस स्थल में मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभाव को लेकर प्रथम लक्षण में जो अव्याप्ति दोष प्रदर्शित की गई थी उसका भी वारण करने का प्रयास द्वितीय लक्षण में गदाधर ने किया है।

"घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वात्" इस प्रकार मथुरानाथोक्त स्थल का उद्भावन न करते हुए - "घटत्वघटाकाशसंयोगान्यतराभाववान् आकाशत्वात्" इस स्थल में अव्याप्ति होगी उस अव्याप्ति के परिहारार्थ निरवच्छिन्न साध्याभाववत्ता के निवेश से ही अव्याप्ति वारित हो सकती है तो साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व विशेषण व्यर्थ है। इसके वारण करने के लिये लक्षण का जो आशय है, जहाँ स्वप्रतियोगिसामानाधिकरण्य स्वप्रतियोगिवैयधिकरण्य इस प्रकार विरूद्ध धर्मद्वय का अध्यास है, वहीं पर ही अभाव का भेदक मानकर ही अव्याप्ति का

---

[146] अभावे साध्यीयत्वानिवेशे ह्रदादिवृत्तिगगनाद्यभाववति पर्वतादौ धूमादेर्वृत्तेरसंभव इति तद्वारणाय साध्यपदसार्थक्यम्, गादाधरी, व्याप्तिसप्तकसार, १८२

[147] अत्र च साध्याभावः साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्यः, गादाधरी, व्याप्तिसप्तकसार, १८३

[148] साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनापि प्रतियोगिता विशेषणीया, गादाधरी, व्याप्तिसप्तकसार, १८३

परिहार सम्भव है। इस प्रकार युक्ति को गदाधर ने विशेषरूप से उपस्थापन किया है।[149] गदाधर के विवेचन शैली में यह प्रतीत होता है कि गदाधरभट्टाचार्य ने प्रत्येक पदों के विस्तृत एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया है इस प्रकार विवेचन जगदीश एवं मथुरानाथ के व्याख्यान मे दिखाई नहीं पडता है।

कालीशङ्कर का अभिमत:-

गङ्गेशोपाध्याय ने पूर्वपक्ष व्याप्ति को पाँच लक्षणों के द्वारा स्वरचित ग्रन्थ 'तत्त्वचिन्तामणि' में प्रतिपादित किया है। उन्हीं पञ्चलक्षणों को लक्ष्य करके रघुनाथशिरोमणि ने 'दीधितिटीका' का निर्माण किया है, तथा दीधितिटीका को आधार ग्रन्थ बनाकर जगदीशतर्कालङ्कार ने 'जागदीशीटीका' की रचना की है। यह जागदीशी टीका उत्तर भारत के नैयायिकों द्वारा विशद रूप से पाठ्य ग्रन्थों में एक है। तदनन्तर जागदीशी को मूल आधार बनाकर मिथिला के आचार्य श्रीकालीशङ्करसिद्धान्ततर्कवागीश ने 'क्रोडपत्र' नामक अद्भुत ग्रन्थ का निर्माण किया। कालीशङ्कर ने प्रथमलक्षण के ऊपर अपना कोई अभिमत प्रतिपादित न करते हैं, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जागदीशीटीका को एवं स्वतन्त्र रूप से मथुरानाथतर्कवागीश द्वारा पूर्वपक्ष व्याप्ति पञ्चलक्षण के ऊपर विरचित माथुरीटीका के मत को ही पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। क्योंकि शिरोमणि ने अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु स्थल को ही लक्ष्य करके शङ्का आरम्भ करते हैं।[150]

अतः साथ ही दीधितिकार भी प्रथमलक्षण पर कोई परिष्कार नहीं करते हैं।
क्रोडपत्रकार भी प्रथमलक्षण को त्यागकर द्वितीयलक्षण का उद्भावन करते हैं क्योंकि अव्याप्यवृत्तिसद्धेतुस्थल में अव्याप्ति होती है। यहाँ प्रथम लक्षण को लेकर अव्याप्यवृत्तिस्थल में अव्याप्ति का प्रदर्शन दिखाते हैं।
प्रथमलक्षण - "साध्याभाववदवृत्तित्वम्"
यथा - "कपिसंयोगि एतद्वृक्षत्वात्"

---

[149] एतल्लक्षण कर्तमते स्वप्रतियोगिसामानाधिकरण्यस्वप्रतियोगिवैयधिकरण्यरूपविरूद्धधर्माध्यासोऽभावस्य भेदक इत्येतादृशयुक्त्या
द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावगुणवृत्तिसंयोगाभावयोर्भेदसिद्धिरित्यनुसृत्याव्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थलेऽव्याप्तिः समाधियते, गादाधरी, व्याप्तिसप्तकसार, १९४

[150] साध्याभाववदवृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतावव्याप्तिमाशङ्क्याह, शिरोमणि।

साध्य- कपिसंयोगः, साध्याभाव- कपिसंयोगाभावः, तदधिकरण- मूलावच्छेदेन-एतद्वृक्ष, तन्निरूपितवृत्तिता- एतत्वृक्षत्व में, वृत्तित्वाभावो नास्ति अतः अव्याप्तिः।

इस सद्धेतुस्थलीय में अव्याप्ति वारण हेतु मणिकार ने द्वितीय लक्षण का उद्भावन किया है। कालीशङ्कर अपने क्रोडपत्र में लिखते हैं, जिस प्रकार "कपिसंयोगि एतद्वृक्षत्वात्" अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुस्थल है, उसी प्रकार "कपिसंयोगी गगनात्" स्थल भी अव्याप्यवृत्ति - साध्यकसद्धेतुस्थल है, अतः इस स्थल में भी दीधितिकार के अनुसार अव्याप्ति अवश्य होनी चाहिए।

साध्यः - कपिसंयोगः, साध्याभावः - कपिसंयोगाभावः, तदधिकरणं- जलह्रदः, तन्निरूपितवृत्तिता मीनादिनिष्ठा, वृत्तित्वाभावो गगनादिनिष्ठा, अतः लक्षण समन्वय हो गया अव्याप्ति नहीं हुई। अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु जितने भी स्थल हैं उन सभी स्थलों में अव्याप्ति होनी चाहिए किन्तु दीधितिकार के मतानुसार "कपिसंयोगी गगनात्" अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुस्थल में अव्याप्ति नहीं हुई, अतः दीधितिकार का कथन असंगत हो गया।

समाधन :-

अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु जितने स्थल हैं उनमें अव्याप्ति नहीं बता रहें अपितु " "अव्याप्यवृत्तिमत्" जितने हेतु होंगे उसमें अव्याप्ति होगी। हेतु को वृत्तिमत् होना चाहिए, अवृत्तिमत् हेतु स्थल को लेकर अव्याप्यवृत्तिस्थल में अव्याप्ति निवारण के लिए नहीं कहा गया है। यहाँ वृत्तिमत् का ग्रहण सत्पदम् से गृहीत है। सत्पदम् अर्थात् विद्यमान वृत्तिमान्। तब साध्य - कपिसंयोगः, साध्याभाव - कपिसंयोगाभावः, तदधिकरण- जलह्रदः, किन्तु गगनहेतु अवृत्तिमत्[151] पदार्थ है, इसलिए इस

अव्याप्यवृत्तिस्थल को ग्रहण नहीं करेंगे। ऐसा दीधितिकार का आशय है।

अब दीधितिकार ने कहा वृत्तिमत् हेतु में अव्याप्ति होगी अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु-स्थल को लेकर तब एक नवीन वृत्तिमत् हेतु अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुस्थल बता रहे हैं - "कपिसंयोगाभाववान् गुणत्वात्"[152] यहाँ गुणत्व हेतु वृत्तिमत् हेतु है।

---

[151] कपिसंयोगी गगनादित्यादावव्याप्तिविरहाद्वृत्तिमतद्धेतावव्याप्त्यर्थे सत्पदम्। क्रोडपत्र,पृ. १

[152] अथैवमपि कपिसंयोगाभाववान् गुणत्वादित्यादाव्याप्तिर्न सम्भवतीति कथं अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुत्वावच्छेदेनाव्याप्तिरुक्ता। क्रोडपत्रम्।

साध्य- कपिसंयोगाभाव, साध्याभाव- कपिसंयोगाभावाभाव कपिसंयोगस्वरूप, तदधिकरण- द्रव्य, तन्निरूपितवृत्तिता द्रव्यत्वनिष्ठा, वृत्तित्वाभावो गुणत्वनिष्ठा, अतः लक्षण समन्वय, अव्याप्ति नहीं हुई वृत्तिमत् हेतु विद्यमान होने पर भी, पुनः दीधितिकार का कथन असंगत हो गया।

समास पक्ष का आश्रय लेकर दीधितिकार अपना मत विशेष प्रस्तुत कर रहे हैं -

अव्याप्यवृत्ति साध्यं यत्रेति अव्याप्यवृत्तिसाध्यकम् बहुव्रीहिसमासः,[153] अव्याप्यवृत्तिसाध्यके सद्धेतुः इति अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्घेतुः तत्र अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतौ अव्याप्तिः। अर्थात् अव्याप्यवृत्तिसाध्याधिकरणे सद्धेतौ। अव्याप्यवृत्ति साध्य के अधिकरण में विद्यमान जो सद्धेतु उसमें अव्याप्ति होगी, ऐसा दीधितिकार का मत है।

समाधान :-

ऐसा समास करने पर "कपिसंयोगाभाववान् गुणत्वात्" में अव्याप्ति होनी चाहिए।

समास- अव्याप्यवृत्तिसाध्याधिकरणे वर्त्तमानो यो हेतुः तत्र अव्याप्तिः।

अव्याप्यवृत्तिसाध्यः कपिसंयोगाभावः, तदधिकरणं- द्रव्यं, वर्त्तमान हेतु गुणत्व नहीं है। और दीधितिकार ने कहा - जो हेतु अव्याप्यसाध्याधिकरण में वर्त्तमान हो उसी में अव्याप्ति होगी पर यहाँ गुणत्व हेतु द्रव्य में विद्यमान नहीं है, तो यह अव्याप्यवृत्तिस्थल को नहीं ले सकते हैं।

"कपिसंयोगि एतद्वृक्षत्वात्" में अव्याप्ति होगी, इस समास के अनुसार साध्याधिकरण - कपिसंयोगाधिकरण एतद्वृक्ष, इस एतद्वृक्ष में विद्यमान हेतु एतद्वृक्षत्व, तो अधिकरण में एतद्वृक्षत्वहेतु विद्यमान है। अतः प्रथम लक्षणानुसार अव्याप्ति होगी। अतः ग्रन्थ असंगत नहीं हुआ।

पुनः आचार्य कहते हैं यदि दीधितिकार द्वारा समास पक्ष को स्वीकार करते हैं तो "कपिसंयोगी गगनात्" स्थल में स्वयमेव असंगत वारण हो जायेगा, सत्पद देने कि क्या आवश्यकता है? यथा - साध्याधिकरणे - कपिसंयोगाधिकरणे द्रव्ये गगनाभावः तो समास के अनुसार स्वयमेव वारण हो गया, अतः सत्पद की वैयर्थ्यापत्ति हो गई।[154]

"अपि च संयोगाभावसाध्यकद्रव्यत्वहेतौ अव्याप्तिसम्भवे द्वितीयेलक्षणेऽपि तद्वारणयोगात्"[155]

---

[153] अव्याप्यवृत्ति साध्यं यत्रेति व्युत्पत्त्या तत्र सन् वर्त्तमानो यो हेतुस्तत्राव्याप्तिरिति वाच्यम्, क्रोडपत्रम्।

[154] तथा सति अव्याप्यवृत्ति साध्यके हेतुरिति समासेनैव गगनहेतुनिराकरणे सत्पदवैयर्थ्यापत्तेः, क्रोडपत्रम्।

[155] क्रोडपत्रम्।

“संयोगाभाववान् द्रव्यत्वात्” सद्धेतुकस्थल में प्रथमलक्षणानुसार साध्यः- संयोगाभावः, साध्याभावः- संयोगाभावाभावः संयोगस्वरूपः, तदधिकरणं द्रव्यं, वृत्तिता- द्रव्यत्वे, वृत्तित्वाभावो न गतः, अतः अव्याप्तिः जातः।

तब द्वितीयलक्षणानुसार “साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्” साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः। इस द्वितीयलक्षण के अनुसार सभी अव्याप्यवृत्तिस्थल का वारण होना चाहिए।

स्थल “कपिसंयोगि एतद्वृक्षत्वात्” साध्य- कपिसंयोगः, साध्यवद्- कपिसंयोगवद्=एतद्वृक्षः, तद्भिन्न- जलह्रद यः साध्याभाववान् - साध्याभाव- कपिसंयोगाभावः, तद्वान् जलह्रदः, अतः जलह्रदः साध्याभाववान् एवं साध्यवद्भिन्न भी हो गया, वृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावो एतद्वृक्षत्वे अतः लक्षणसमन्वयः।

स्थल “ संयोगाभाववान् द्रव्यत्वात्” साध्य- संयोगाभावः, साध्यवद्- संयोगाभाववद् गुणादि, तद्भिन्नं द्रव्यं, यः साध्याभावः - संयोगाभावाभावः संयोगरूप, तद्वद् द्रव्यं, वृत्तिता द्रव्यत्वे वृत्तित्वाभावो न गतः। द्वितीयलक्षणानुसार लक्षणसमन्वय होना चाहिए किन्तु अव्याप्यवृत्तिसद्धेतुस्थल होने पर भी अव्याप्ति हुई अतः असंगत हो गया।

समाधान :-

तब इसके समाधान में आचार्य कहते हैं - “केवलान्वयिभिन्नाव्याप्यवृत्तिसाध्यक-सद्धेतुत्वावच्छेदेनाव्याप्तिवारणाय द्वितीयलक्षणमिति युक्तमुत्पश्यामः”[156]

में द्वितीयलक्षण के अनुसार वारण होगा।

“साध्यवद्भिन्न साध्याभाववदवृत्तित्वम्” समास द्वारा साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभाववान् इति कर्मधारयसमास “साध्यवद्भिन्न साध्याभाववान्”

साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः। पूर्वलक्षण के अनुसार कहाँ अव्याप्ति हो रही है? कैसा अव्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थल लेना है? उसका निराकरण किया गया है। तथा उस अव्याप्यवृत्तिस्थल को द्वितीय लक्षण के अनुसार अव्याप्ति का निवारण किया जा रहा है।

---

[156] क्रोडपत्रम्।

सद्धेतुस्थल “पर्वतो वह्निमान् धूमात्” साध्य - वह्निः, साध्यवत्- वह्निमत्=पर्वत, साध्यवत्भिन्न- जलह्रदः, उस जलह्रद को साध्याभाववान् भी होना चाहिए, साध्याभाव- वह्न्याभाव, तद्वान् जलह्रदः, तन्निरूपित वृत्तिता मीनदौ, वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

असद्धेतुस्थल “धूमवान् वह्नेः” साध्य- धूमः, साध्यवत्-धूमवत्=पर्वतः, साध्यवत्भिन्न- अयोगोलकः, यः साध्याभावः=धूमाभावः, तद्वान् -अयोगोलकः, तन्निरूपित वृत्तिता वह्नौ सत्त्वात् वृत्तित्वाभावो न गतः अतः नाऽतिव्याप्तिः।

अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुस्थल “कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्” साध्य- कपिसंयोगः, साध्यवत्- कपिसंयोगवत् = एतद्वृक्षः, तद्भिन्नः जलह्रदः, यः साध्याभावः - कपिसंयोगाभावः, तद्वान् जलह्रदः, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य एतद्वृक्षत्वे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

प्रथम लक्षण के अनुसार “कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्” इस स्थल में दोष आ रहा था और द्वितीयलक्षण के अनुसार दोष वारण हो गया। यहाँ पर साध्याभाववान् पदार्थ साध्यवद्भिन्न में विशेषण दिया गया है। अब साध्याभाववान् से मूलावच्छेदेन एतद्वृक्ष को नहीं लेंगे साध्यवद्भिन्न कह देने से एतद्वृक्ष से इतर कोई अधिकरण लेना पडेगा, तब अव्याप्ति दोष का वारण द्वितीयलक्षण के अनुसार हो जायेगा। यह अव्याप्तिदोष कर्मधारय समास करने के पश्चात् हुआ।

साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभाववान् = साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववान्

साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।

कर्मधारय समास के अनुसार लक्षण - साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः। इस लक्षण में से यदि “साध्याभाववान्” पद हटा दें तब लक्षण का स्वरूप होगा - “साध्यवद्भिन्न निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः” या “साध्यवद्भिन्न-अवृत्तित्वम्”।

सद्धेतुस्थल “वह्निमान् धूमात्” साध्य-वह्निः, साध्यवत्- वह्निमत्=पर्वतः, साध्यवद्भिन्न=पर्वतभिन्न- जलह्रदः, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षण समन्वयः।

असद्धेतुस्थल “धूमवान् वह्नेः” साध्य- धूमः, साध्यवत्- धूमवत्=पर्वतः, साध्यवद्भिन्न=धूमवत्भिन्नः- अयोगोलकः, तन्निरूपित वृत्तिता वह्नौ, वृत्तित्वाभावो वह्नौ नास्ति। अतः नाऽतिव्याप्तिः।

अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुस्थल “कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्” साध्य- कपिसंयोगः, साध्यवत्- कपिसंयोगवत्=एतद्वृक्षः, साध्यवत्भिन्नः - जलह्रदः, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ, वृत्तित्वाभावस्य एतद्वृक्षत्वे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

अतः साध्याभाववान् पद देने की आवश्यकता ही नहीं है, इसके विना ही लक्षण समन्वय हो गया। तब साध्याभाव पद की वैयर्थ्यापत्ति हो गई। तब कर्मधारय समास करने पर साध्याभाव पद की वैयर्थ्यापत्ति आयेगी। आचार्य गङ्गेशोपाध्याय साध्याभाव पद कहकर गये थे, और प्रथमलक्षण के अनुसार “कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्” में अव्याप्ति वारण के लिये द्वितीयलक्षण में साध्याभाव पद दिया गया है, और उसकी वैयर्थ्यापत्ति आयेगी तो असंगति होगी।

तब ऐसी स्थिति में तत्पुरुष समास आश्रयण करेंगे। तत्पुरुष समास पक्ष में -

“साध्यवद्भिन्ने साध्याभावः इति साध्यवद्भिन्नसाध्याभावः इति तत्पुरुषसमासः”[157]

साध्यवद्भिन्नसाध्याभावः यत्रास्ति सः साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववान् तन्निरूपितवृत्तित्व- अभावो व्याप्तिः।

साध्यवद्भिन्ने पद में सप्तमी का अर्थ “वृत्ति” करेंगे। तब लक्षण का स्वरूप होगा-

“साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावः तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः”

सद्धेतुस्थल “वह्निमान् धूमात्” साध्य-वह्निः, साध्यवत्- वह्निमत्=पर्वतः, साध्यवद्भिन्न=पर्वतभिन्न- जलह्रदः, वृत्तिर्यः साध्याभावः अर्थात् तत्र वर्त्तमानो यो साध्याभावः वह्न्याभावः, तद्वद्- जलह्रदः, तन्निरूपितवृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

असद्धेतुस्थल “धूमवान् वह्नेः” साध्य- धूमः, साध्यवत्- धूमवत्=पर्वतः, साध्यवद्भिन्न=धूमवत्भिन्नः- अयोगोलकः, वृत्तिर्यः साध्याभावः अर्थात् तत्र वर्त्तमानो यो साध्याभावः धूमाभावः, तद्वत् अयोगोलकः , तन्निरूपितवृत्तिता वह्नौ वृत्तित्वाभावो नास्ति वह्नौ, अतः नाऽतिव्याप्तिः।

अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुस्थल “कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्” साध्य- कपिसंयोगः, साध्यवत्- कपिसंयोगवत्=एतद्वृक्षः, साध्यवत्भिन्नः - जलह्रदः, वृत्तिर्यः साध्याभावः अर्थात् तत्र

[157] साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभाववान्श्चेति कर्मधारये साध्याभावपद वैयर्थ्यापत्तेः अतः सप्तमीसमासः कृतः, क्रोडपत्रम्।

वर्त्तमानो यो साध्याभावः= कपिसंयोगाभावः, तद्वत् जलह्रदः, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

इस स्थल में तद्वत् से मूलावच्छेदेन एतद्वृक्षः, तन्निरूपितवृत्तिता एतद्वृक्षत्वे, वृत्तित्वाभावो एतद्वृक्षत्वे न सत्वात्, अतः अव्याप्तिः।

तब इसके वारणार्थ हेतु प्रदान करते हैं - "अधिकरणभेदेनाभावभिन्नत्वम्"[158] तब जलह्रद में विद्यमान कपिसंयोगाभाव का अधिकरण पुनः जलह्रद ही होगा न कि मूलावच्छेदेन एतद्वृक्ष तब अव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि जलह्रद में रहने वाला कपिसंयोगाभाव भिन्न है एवं मूलावच्छेदेन एतद्वृक्ष में रहने वाला कपिसंयोगाभाव भिन्न है, अतः अधिकरणभेद से अभाव भिन्न-भिन्न होता है। तब जलह्रदवृत्तिर्यः साध्याभाव कपिसंयोगाभाव तद्वत् जलह्रद ही होगा न कि मूलावच्छेदेन एतद्वृक्ष होगा।

न च तत्रापि साध्यवद्भिन्नेऽभाव इत्यास्तां कि साध्यपदेन अधिकरणभेदेनाभावभिन्नत्वमतेनैवतल्लक्षणकरणात्। गगनाभावादिकमादाय अव्याप्ति विरहात् इति वाच्यम्।

यदि "साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावः" लक्षण में साध्यपद का अनुपादान करते हैं तब क्या विचित्रता आयेगी? तब लक्षण का स्वरूप होगा- "साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः अभावः तद्वन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः"।

सद्धेतुस्थल "वह्निमान् धूमात्" साध्य-वह्निः, साध्यवत्- वह्निमत्=पर्वतः, साध्यवद्भिन्न=पर्वतभिन्न- जलह्रदः, जलह्रदवृत्तिर्यः अभावः घटाभावः, तद्वत् जलह्रदः, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् लक्षणसमन्वयः।

यहाँ वह्निमान् धूमात् में लक्षण समन्वय हो ही गया, अतः साध्यपद की वैयर्थ्यापत्ति हो गई।

साध्यवद्भिन्न-जलह्रद, वृत्तिर्यः अभावः - घटाभावः, तद्वत् - पर्वतः को लेंगे तन्निरूपित वृत्तिता धूमे सत्त्वात् वृत्तित्वाभावो न गतः अतः अव्याप्तिः। इस कारण से साध्यपद देना आवश्यक अव्याप्ति वारणार्थ।

पुनः साध्यपद की वैयर्थ्यापत्ति प्रदर्शित करते हैं -

---

[158] अधिकरणभेदेनाभावभिन्नत्वमतेनैवैतल्लक्षणकरणात् गगनाभावादिकमादायाव्याप्तिविरहादिति वाच्यम्, क्रोडपत्रम्।

साध्यवद्भिन्न- जलह्रदः, वृत्तिर्यः अभावः घटाभावः इस घटाभाव का अधिकरण "अधिकरणभेदेन अभावभिन्नत्वम्" से जलह्रदः को ही ग्रहण करेंगे तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावो धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः। अतः साध्यपद दिये बिना ही लक्षणसमन्वय हो गया ।
तब इदं वाच्य न च वाच्यम्।

साध्यपद की सार्थकता :-

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्ने वर्तते यः"[159] - जगदीशः।
अब अभाव से समवायेन वह्न्याभावः का ग्रहण करेंगे, यदि साध्यपद देते तो साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यनिष्ठ-अभाव ले सकते हैं। तो हम समवायेन वह्न्याभाव लेंगे, इसका प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध समवायसम्बन्ध, अभावीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध समवायसम्बन्ध।
स्थल "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" साध्य- वह्नि, साध्यवत्- वह्निमत्=पर्वत संयोगेनसम्बन्धेन, किन्तु संयोगसम्बन्ध से वह्निमत् पर्वत को लेना है ऐसा निर्देश नहीं किया गया है तो हम साध्यवत्- स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन अर्थात् जिस सम्बन्ध से अभाव लेंगे उसी सम्बन्ध से साध्यवत् को लेना है। अभाव पद से हमें <u>समवायेन वह्न्यभावः</u> को लेना है, इसका प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धः समवायसम्बन्धः। अतः स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन= समवायसम्बन्धेन, साध्य- वह्नि, साध्यवत्- समवायसम्बन्धेन वह्निमत्= वह्नि-अवयवः, तद्भिन्न पर्वतः, तद्वृत्तिर्यः अभावः- समवायेन वह्न्याभावः, समवायेनवह्न्याभावस्य अधिकरणम् (तदधिकरणम्) पर्वतः, तन्निरूपित वृत्तिता धूमे सत्त्वात् वृत्तित्वाभावो नास्ति अतः अव्याप्तिः।

तब लक्षण का स्वरूप होगा-

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवत्भिन्नवृत्तिर्यः अभावः तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

इस लक्षण में हमने साध्य पद नहीं दिया है। साध्यपद का वैयर्थ्य स्वीकार कर यदि साध्यपद का अनुपादान करते हैं तब अभाव से हम समवायेन वह्न्याभाव स्वीकार किया, उसका प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध समवायसम्बन्ध है, उसी समवाय सम्बन्धेन साध्यवत् लेना

[159] क्रोडपत्रम् ।

होगा तब साध्यवत् = वह्न्यवयव होगा, उससे भिन्न पर्वत तद्वृत्तिर्यो अभावः समवायेन वह्न्यभावः, तद्वत् पर्वत तन्निरूपित वृत्तिता धूमे सत्त्वात् वृत्तित्वाभावो नास्ति अव्याप्तिः, साध्यपद न देने से अव्याप्ति हुई। यदि साध्यपद देंगे तब साध्याभाव ही लेना होगा तो साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः ही लेना होगा, अतः साध्यपद देने से अव्याप्ति का वारण होगा जायेगा।

साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध वह्निमान् धूमात् में संयोग सम्बन्ध है। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव का आकार संयोगेन वह्न्याभावः ही होगा। साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावः तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः लक्षण के अनुसार साध्याभाव से संयोगेन वह्न्याभाव ही लेंगे न कि समवायेन वह्न्याभाव।

स्वप्रतियोगितावाच्छेदकसम्बन्धेन अतः संयोगसम्बन्धेन साध्यवत् वह्निमत् पर्वत, तद्भिन्न जलह्रद, तद्वृत्तिर्यः अभावः संयोगेन वह्न्याभावः तद्वत् जलह्रदः, तन्निरूपितवृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः। अतः साध्य पद देने से अव्याप्ति नहीं होगी।

लक्षण स्वरूप -

“स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यनिष्ठ प्रतियोगिताक - अभावः तद्ववन्निरूपितावृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।”

अतः जगदीश तर्कालङ्कार द्वारा साध्यपद की सार्थकता का प्रदर्शन विशद रूप से किया है।

पुनः आचार्य शङ्का प्रदर्शित करते हैं -

साध्यवद्भिन्न साध्याभाववान् - साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभाववान् इसके अनुसार लक्षण होगा - साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।

इस लक्षण में साध्याभाववान् पद दिये बिना ही लक्षण समन्वय हो जायेगा। तब इसके अनुसार लक्षण है - “ साध्यवद्भिन्नः निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।

स्थल “वह्निमान् धूमात्” साध्य- वह्नि, साध्यवत् - वह्निमत् , तद्भिन्न जलह्रदः, तन्निरूपितवृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

स्थल “कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्” साध्य - कपिसंयोग, साध्यवत् - कपिसंयोगवत् = एतद्वृक्ष, तद्भिन्न जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ, वृत्तित्वाभावस्य एतत्वृक्षत्वे सत्त्वात् लक्षण समन्वयः।

इसमें साध्याभाववान् पद वैयर्थ्य होने से कर्मधारय समास का त्यागकर सप्तमीतत्पुरुषसमास किया है। तथा सप्तमीतत्पुरुषसमास में भी साध्यपद की वैयर्थ्य की आपत्ति आ रही थी तो परिष्कार किया था।

तब लक्षण का स्वरूप था -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः तद्वन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

यदि ऐसा करते लक्षण करते हैं तो कर्मधारयसमास पक्ष में भी साध्याभाववान् पद सार्थक्य होगा। कर्मधारय समास के अनुसार साध्याभाववान् पद नहीं देंगे तब अव्याप्ति लगेगी।

अव्याप्तिरहित - साध्यवद्भिन्न - वह्निमत्=पर्वतभिन्न= जलह्रदः, तन्निरूपितवृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः। अव्याप्ति प्रदर्शन - साध्य- वह्निः, समवायेन साध्यवत्= वह्न्यवयवः, तद्भिन्न -पर्वतः, तन्निरूपितवृत्तिता धूमे वृत्तित्वाभावस्य नास्ति अव्याप्तिः।

समाधान :-

साध्याभाववान् पद उपादान करने से अव्याप्ति दोष का वारण हो जायेगा।

स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद्भिन्नो यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभाववान् तन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।

स्थल "वह्निमान् धूमात्" साध्तावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः संयोगेनवह्न्याभावः, प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धः- संयोगसम्बन्धः।

साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन संयोगसम्बन्धेन साध्यः - वह्निः, साध्यवद् - वह्निमत्=पर्वतः तद्भिन्न-जलह्रदः तन्निरूपितवृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

अतः साध्याभाववान् पद देने से अव्याप्ति का वारण हो गया।

सप्तमीतत्पुरुषसमास पक्ष में लक्षण स्वरूप -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धाव-च्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः तद्ववन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

अब पुनः परिष्कार करके लक्षण स्वरूप -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धाव-च्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः तद्ववन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

पूर्वलक्षण में साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न पद निवेश करना आवश्यक है अन्यथा "घटभिन्नः पटत्वात्" सद्धेतुस्थल में अव्याप्ति बनी रहेगी।

साध्यः-घटभिन्नः, हेतुः- पटत्व, तादात्म्येन साध्य बनाने पर त्व नहीं जोडते हैं। घटभिन्न तादात्म्येन पट में रहेगा, अतः सद्धेतु है। यहाँ साध्यतावच्छेदकसम्बन्धः तादात्म्यसम्बन्धः, घटभिन्नः। हेतुतावच्छेदकसम्बन्धः - समवायसम्बन्धः। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः तादात्म्येनघटभिन्नभेदः लेना है किन्तु हम यहाँ तादात्म्येन द्रव्यभिन्नभेद ले लेंगे क्योंकि आपने साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न निवेशतो क्रिया नहीं कहा है। आपने केवल इतना कहा है- "साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः" कहा है तो हम तादात्म्येन द्रव्यभिन्नभेद लेंगे। द्रव्यभिन्नभेद द्रव्य में रहेगा तथा द्रव्यत्व भी द्रव्य में रहेगा। द्रव्यभिन्नभेद = द्रव्यत्वस्वरूप है।

पूर्वलक्षण के अनुसार -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धाव-च्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः तद्ववन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

अब यहाँ साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव तादात्म्येनद्रव्यभिन्नभेदः का ग्रहण करेंगे। यह द्रव्यत्व स्वरूप है। इसका प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध तादात्म्यसम्बन्ध है। तब स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनतादात्म्येनसम्बन्धेनसाध्यः- घटभिन्नः, साध्यवत् - घटभिन्नवत् =पटः, साध्यवत्भिन्नः = पटभिन्नः=घटः, वृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः तादात्म्येन द्रव्यभिन्नभेदः=द्रव्यत्वरूप, यह भेद घट में मिल जायेगा। तद्वत् =द्रव्यत्वरूपवत् =पटः, तन्निरूपितवृत्तिता पटत्वे वृत्तित्वाभावो नास्ति अव्याप्तिः।

तब इसके समाधान में कहते हैं कि साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न पद निवेश करने से अव्याप्ति वारण हो जायेगा।

तब लक्षण स्वरूप -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावः तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

समन्वय :-

स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनतादात्म्येनसम्बन्धेन साध्यः - घटभिन्नः, साध्यवत् - घटभिन्नवत् = पटः, साध्यवत्भिन्नः=पटभिन्नः=घटः, घटवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावतादात्म्येनघटभिन्नभेदः घटत्वरूपः, तद्वत् = घटत्ववत्=घट, तन्निरूपितवृत्तिता घटत्वे वृत्तित्वाभावास्य पटत्वे, भवति लक्षणसमन्वयः।

यहाँ पर तादात्म्येन द्रव्यभिन्नभेद की जगह तादात्म्येन घटभिन्नभेद ही ले सकेंगे क्योंकि हमने लक्षण में साध्यावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न निवेश कर दिया है। अतः "सप्तमीसमासपक्षे स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्ने यः साध्यताघटकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावस्तद्वत् अवृत्तित्वमेव वाच्यम्।" [160] अन्यथा "घटभिन्नः पटत्वात्" इस सद्हेतु स्थल में अव्याप्ति होगी। अन्यथा साध्यताघटकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावमात्रनिवेशेघटभिन्नस्य तादात्म्येन साध्यत्वे पटत्वादिहेतौ द्रव्यत्वात्मकं द्रव्यभिन्नभेदमादाय अव्याप्ति आपत्तेः। अत्यन्ताभाव का अत्यन्ताभाव प्रतियोगिस्वरूप या अभावस्वरूप इतिकेचित्।

अन्योन्याभाव का अन्योन्याभाव प्रतियोगितावच्छेदक स्वरूप होगा ही। अभावाभावस्यातिरिक्तत्वे अपि तद्भिन्नभेदस्य तत्स्वरूपत्वोपगमात्। तद्भिन्नभेद तत्स्वरूप होता है अर्थात् द्रव्यभिन्नभेदः द्रव्यत्वस्वरूपः। कर्मधारयपक्षे तु साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताकत्वनिवेशवैयर्थ्यापत्तेः ध्येयम्। अब कह रहे हैं कि कर्मधारयपक्ष में साध्यतावच्छेदकाववच्छिन्न पद देने की जरूरत नहीं है।

लक्षण-

"साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद् भिन्नोयः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न - प्रतियोगिताकभाववान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

समन्वयः - "घटभिन्नः पटत्वात्"

स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यः घटभिन्नः साध्यवत् पटः साध्यवत्भिन्नः घटः यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः तादात्म्येन द्रव्यभिन्नभेदः द्रव्यत्वरूपः तद्वान् द्रव्यत्ववान् घटः तन्निरूपितवृत्तिता घटत्वे सत्वात् वृत्तित्वाभावास्य पटत्वे भवति लक्षणसमन्वयः। अतः कर्मधारय पक्ष में साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व निवेशः वैयर्थ्यमिति ध्येयम्।

अतः सप्तमीतत्पुरुषसमास के अनुसार लक्षण -

---

[160] क्रोडपत्रम्

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यताव-च्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभावः तद्वन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

तथा कर्मधारयसमास के अनुसार लक्षण -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नो यो साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिता-काभाववान् तन्निरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

यहाँ कर्मधारयसमास पक्ष में अभाव पद निवेश के बिना ही लक्षण समन्वय हो जायेगा ऐसा कहने पर लक्षण स्वरूप होगा -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद्भिन्नो यः साध्यतावच्छेदक-सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकवान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"[161]

स्थल "वह्निमान् धूमात्" साध्य- वह्निः, साध्यवत्- वह्निमत्=पर्वतः=साध्यवत्भिन्नः = जलह्रदः, इस जलह्रद को साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवान् होना चाहिए, तब संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवान् जलह्रद, प्रतियोगिताक अभाव ही होता है तद्वान् जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादौ, वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

तो जब ऐसे ही लक्षण समन्वय हो जा रहा है तो अभावत्वेन अभाव वैयर्थ्य है।

सप्तमीतत्पुरुष में अभाववत्वेन अभाव निवेश करना पडेगा।

तब लक्षण का स्वरूप -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनसाध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

यदि इस लक्षण में अभावत्वेन अभाव का निवेश न किया जाये तब लक्षण का स्वरूप होगा -

"स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक तद्वन्निरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

---

[161] केचित्तु कर्मधारयपक्षेऽभावत्वेनभावप्रवेशवैयर्थ्यम्
साध्यताघटकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमात्रेणाभावनिवेशस्यैव सम्यक्त्वात् । क्रोडपत्रम् ।

प्रतियोगिताकः या प्रतियोगितानिरूपक दोनों एक ही बात है। प्रतियोगिताकः अभाव ही होता है तो लक्षण अभावत्वेनऽभाव क्यों निवेश कर रहे हैं?

स्थल "वह्निमान् धूमात्" में बिना अभाव के ही लक्षण समन्वय हो जा रहा है।

यथा- स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन संयोगसम्बन्धेन साध्यवत् - वह्निमत् पर्वतः, साध्यवत्भिन्नः पर्वतः, तद्भिन्न=पर्वतभिन्न=जलह्रदः, जलह्रदवृत्तिर्यः अभावः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न संयोगसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः=संयोगेनवह्न्याभावः तद्वत् जलह्रदः, तन्निरूपितवृत्तिता मीनादौ वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

अतः सप्तमीतत्पुरुष समास में अभात्वेन अभाव की आवश्यकता नहीं पडी उसके बिना ही लक्षण समन्वय हो गया।

अब प्रतियोगिताकनिरूपक अभाव होता है ऐसा कुछ मानते हैं, लेकिन प्रतियोगिताक कोई दूसरा भी होता है तो उसको भी ले सकते हैं। दूसरे को लेकर ही काम चलायेंगे उसी को अब बता रहें हैं ।

दोषोद्भावन - सप्तमीसमास पक्ष में अभाव पद निवेश न करने पर दोष - साध्यवत्भिन्नः- जलह्रदः, जलह्रदवृत्तिः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अधिकरणता तद्वत् पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता धूमे, वृत्तित्वाभावो नास्ति अव्याप्तिः।

साध्यवद्भिन्नः जलह्रदः, जलह्रदवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपकः=द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपकः अधिकरणता, तद्वत् - पर्वतः, तन्निरूपितवृत्तिता धूमे सत्त्वात् भवति अव्याप्तिः।

दोष परिहार :-

दोषपरिहार हेतु अभावत्वेन अभाव का निवेश करना पडेगा-

साध्यवद्भिन्न= जलह्रदः, जलह्रदवृत्तिर्यः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न संयोगसम्बन्धावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभावः (अभावपद निवेश करने पर) संयोगेनवह्न्याभावः, तद्वत् जलह्रदः, तन्निरूपितवृत्तिता= मीनादौ, वृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्त्वात्।

विशेष रूप से द्वितीय लक्षण की समीक्षा :-

द्वितीय लक्षण के "साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववद्वृत्तित्वम्"। इस लक्षण के उद्भावन में दीधितिकार ने अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुकस्थल में अव्याप्तिपरिहार करने के लिये द्वितीय लक्षण का

उद्भावन जिस प्रकार किया गया उसी प्रकार शिरोमणि के मत को स्वीकार करते हुये कालीशङ्कर लिखते हैं "कपिसंयोगी गगनात्" यहाँ पर अव्याप्ति न होने के कारण वृत्तिमत् हेतु में अव्याप्ति परिहार करने के लिये हेतु में सत्पद का विशेषण दिया है।[162] कपिसंयोगाभाव के अधिकरण मूलावच्छिन्न वृक्ष में गगन के अवृत्ति होने के कारण प्रथम लक्षण में "कपिसंयोगी गगनात्" यहाँ पर अव्याप्ति की प्रसक्ति नहीं होगी तो क्यों द्वितीय लक्षण का उद्भावन किया गया? उसको दृष्टि में रखते हुये, वृत्तिमत् हेतु में अव्याप्ति परिहारार्थ सत्पद का विशेषण दिया गया अर्थात् गगनहेतु वृत्तिमत् नहीं है, क्योंकि न्यायसम्प्रदाय के अनुसार गगन अवृत्ति पदार्थ है।[163] अर्थात् वृत्तिमद् हेतु एतद्वृक्षत्वहेतु हेतु है, तो "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" एतद्स्थल में कपिसंयोगाभाव के अधिकरण मूलावच्छिन्नवक्ष में एतद्वृक्षत्व हेतु के विद्यमान होने से अव्याप्ति होगी इस अव्याप्ति के परिहारार्थ द्वितीय लक्षण का उद्भावन किया गया।

कालीशङ्कर स्वीय विचार प्रसंग में "कपिसंयोगाभाववान् गुणत्वात्" यहाँ पर कोई अव्याप्ति की प्रसक्ति नहीं होगी क्योंकि कपिसंयोगाभावाभाव कपिसंयोगरूप साध्याभाव के अधिकरण द्रव्य होंगे, तन्निरूपित वृत्तित्वाभाव गुणत्व में रहने के कारण कोई अव्याप्ति नहीं होगी तो क्यों अव्याप्ति का उद्भावन किया गया। यदि अव्याप्यवृत्ति साध्य जहाँ है, इस प्रकार व्युत्पत्ति से वहाँ पर यदि हेतु विद्यमान होता है तो अव्याप्यवृत्ति साध्यक में हेतु[164] इस प्रकार समास से गगन हेतु में अव्याप्ति परिहार करने में समर्थ है तो सत्पद की वैयर्थ्य की आपत्ति आयेगी अतः संयोगाभाव साध्य द्रव्यत्व हेतु में अव्याप्ति परिहार करने के लिये द्वितीय लक्षण का उद्भावन किया गया।[165] अर्थात् साध्याभाव संयोगाभावाभाव संयोग स्वरूप तद्वद् द्रव्य तन्निरूपित वृत्तिता द्रव्यत्व हेतु में रहने के कारण अव्याप्ति होगी। उस अव्याप्ति के परिहार करने के लिये द्वितीय लक्षण का निरूपण किया गया। द्वितीय लक्षण के स्वीकार करने पर भी संयोगाभाववद्भिन्न जो साध्याभाव संयोगाभावाभाव तद्वद् द्रव्य भी हो जायेंगे क्योंकि गुणवृत्ति संयोगाभाव द्रव्यवृत्ति संयोगाभाव एक होने के कारण साध्यवद्भिन्नसाध्याभावाधिकरण द्रव्य होंगे तन्निरूपित वृत्तिता ही द्रव्यत्व हेतु में रहेगी अतः अव्याप्ति होगी। इसीलिए केवलान्वयी भिन्न

---

[162] कपिसंयोगी गगनादित्यादावव्याप्तिविरहाद्वृत्तिमद्हेतावव्याप्त्यर्थं सत्पदम्। क्रोडपत्रम्

[163] गगनमवृत्तिः पदार्थः।

[164] चाव्याप्यवृत्ति साध्यं यत्रेति व्युत्पत्त्या तत्र सन् वर्तमानो यो हेतुस्तत्राव्याप्तिरित वाच्यम्। क्रोडपत्रम्

[165] तथा सति अव्याप्यवृत्तिसाध्यके हेतुरिति समासेनैव गगनहेतुनिराकरणे सत्पदवैयर्थ्यापत्तेः। क्रोडपत्रम्

अव्याप्यवृत्ति साध्यक सद्धेतुत्वावच्छेदेन अव्याप्ति परिहारार्थ द्वितीय लक्षण का सविशेषेण उद्भावन किया गया है।[166]

जिस प्रकार मथुरानाथ, गदाधरभट्टाचार्य और जगदीशतर्कालङ्कार ने द्वितीय लक्षण के विचार प्रसंग में कर्मधारय समास का परित्याग करके सप्तमी तत्पुरुष को स्वीकार किया है ठीक उसी प्रकार कालीशंकर ने भी सप्तमी तत्पुरुष समास को ही प्रदर्शित किया है।[167]

साध्यपद की जो सार्थकता में जो युक्ति पूर्वाचार्यों ने तथ्य प्रदर्शित किया है कालीशंकर ने भी जगदीश के अनुरूप ही प्रतिपादन किया है।[168]

साध्यवत्ता स्वप्रतियोगिकत्व स्वसामानाधिकरण्य एतद् उभयसम्बन्धेन स्वीकार करना पडेगा ऐसी विवक्षा कालीशङ्कर ने अपने विचार प्रसंग में प्रतिपादन किया है। जो कि मूल ग्रन्थ में प्रतिपादित नहीं है।[169] स्वसामानाधिकरण्य मात्र को यदि सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया जाये तो घटाभाव भी सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से साध्यवत्ता होने के कारण, उसको लेकर कोई अव्याप्ति नहीं होगी। तब साध्यपद की वैयर्थ्य की आपत्ति आयेगी। इसीलिये स्वप्रतियोगिकत्व सम्बन्ध स्वीकार करना आवश्यक है। स्वप्रतियोगिकत्वमात्र के सम्बन्ध स्वीकार करने पर तादृश साध्यवद्भिन्न साध्याभाव की अप्रसिद्धि होगी अतः स्वसामानाधिरण्य सम्बन्ध भी स्वीकार करना आवश्यक है। अर्थात् उभय सम्बन्ध से साध्यवत्ता स्वीकार करना चाहिये, ऐसा कालीशङ्कर का अभिमत है।[170]

“विशिष्टसत्तावान् जातेः” इ स प्रकार असद्धेतु में अतिव्याप्ति परिहार करने के लिये सामानाधिकरण्य सम्बन्ध को स्ववृत्ति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से साध्यवत्ता को ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार जो कहते हैं वह पक्ष समीचीन नहीं है। क्योंकि साध्याभाव में साध्यपद के सार्थकता के लिये स्वप्रतियोगिकत्व घटित सम्बन्ध के निवेश करने

---

[166] अपि च संयोगाभावसाध्यकद्रव्यत्वहेतावव्याप्तिसम्भवे द्वितीयलक्षणेऽपि तद्वारणायोगात् । तस्मात् केवलान्वयिभिन्नाव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुत्वाच्छेदेनाव्याप्तिवारणाय द्वितीयलक्षणमिति युक्तमुत्पश्यामः ।।१।।

[167] साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभाववान्श्चेति कर्मधारये साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः अतः सप्तमीसमासः कृतः ।

[168] स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्ने वर्तते यः समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावस्तद्वति हेतोर्वृत्तितयाऽव्याप्तिवारणाय साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितालाभाय साध्यपदमिति जगदीशः।

[169] तत्र साध्यवत्त्वं स्वप्रतियोगिकत्वस्वसामानाधिकरण्योभयसम्बन्धेन ।

[170] सामानाधिकरण्यमात्रस्य सम्बन्धत्वे घटाभावादेरपि तादृशसम्बन्धेन साध्यवत्तायाा तमादायाव्याप्तिविरहेण साध्याभाव इत्यत्र साध्यपदवैयर्थ्यापत्तेः । स्वप्रतियोगिकत्वमात्रस्य सम्बन्धत्वे तादृश साध्यवद्भिन्नसाध्याभावाप्रसिद्धिरतो द्वयमुपात्तम्।

से ही उपर्युक्त अतिव्याप्ति परिहार सम्भव है, तो स्ववृत्तिसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यसम्बन्ध का निवेश करना युक्ति संगत नहीं है।[171]

तृतीय अध्याय
व्याप्ति का तृतीयलक्षण

तृतीय लक्षण के उद्भावन में बीज :-

पञ्चलक्षणी के व्याप्ति प्रथम लक्षण "साध्याभाववदवृत्तित्वम्" ऐसा लक्षण स्वीकार करने पर अव्याप्यवृत्ति[172] साध्यक सद्धेतु "अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" में प्रथम लक्षण के अनुसार

---

[171] साध्याभाव इत्यत्र साध्यपदसार्थक्याय स्वप्रतियोगिकत्वघटितसम्बन्धानुधावनं प्रक्षालनाद्धीत्यादिन्यायेनायक्तं, सामानाधिकरण्यमात्रसम्बन्धेनैव साध्यवत्त्वविवक्षणे सर्वदोषाभावात् ।

[172] निरवच्छिन्नवृत्तिकान्यत्वमव्याप्यवृत्तित्वम् - व्या.पं. गंगा. टी. पृ-६०

अव्याप्ति होगी, क्योंकि साध्य-कपिसंयोग, साध्याभाव - कपिसंयोगाभाव, साध्याभावाधिकरण - कपिसंयोगाभावाधिकरणमूलावच्छिन्न एतद्वृक्ष, मूलावच्छिन्न एतद्वृक्षनिरूपितवृत्तिता ही एतद्वृक्षत्व में वृत्तित्वाभाव न होने से अव्याप्ति होती है, तब समाधान हेतु प्रथम लक्षण का परित्याग करके द्वतीय लक्षण का उद्भावन करते हैं- "साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्" अर्थात् नव्यनैयायिकों के अनुसार साध्यवद्भिन्न जो साध्याभाव तद्वन्निरूपित आधेयता का अभाव को व्याप्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। तब "अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" सद्धेतु स्थल में द्वितीय लक्षण के अनुसार अव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि साध्य-कपिसंयोग, साध्यवद्-कपिसंयोगवद्-एतद्वृक्ष, एतद्वृक्ष से भिन्न साध्यभाव - कपिसंयोगाभाव, तदधिकरण - गुणादि होंगे, एतद्वृक्ष नहीं होगा, तन्निरूपित वृत्तिता गुणत्व में वृत्तित्वाभाव एतद्वृक्षत्व में विद्यमान रहने से स्थल में अव्याप्ति नहीं होगी।

"संयोगी द्रव्यत्वात्" इस अव्याप्यवृत्ति साध्यकसद्धेतु स्थल में प्रथम लक्षण के अनुसार अव्याप्ति दोष वारण न होने पर साध्याभाव में साध्यवद्भिन्नत्व को विशेषण बनाया गया। आचार्य मथुरानाथ लिखते हैं - "एवञ्च साध्यवद्भिन्नवृतीत्यनुक्तौ संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः।" इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हुए व्याप्तिपञ्चक के टीकाकार वामाचरण भट्टाचार्य कहते हैं - "गुणादिवृत्तिसंयोगाभावस्य द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावादतिरिक्तत्वे प्रमाणाभावाद् द्वितीयलक्षणे संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्यप्तिरस्त्येव, अतस्तद्वारणायाभिधीयमानं तृतीयलक्षणं व्याख्यातुमुक्रमते "साध्येति"[173]। घटः संयोगी द्रव्यत्वात् स्थल में साध्य - संयोग, साध्यवद् - संयोगवद्=द्रव्य, साध्यवद्भिन्न- द्रव्यभिन्न=गुण, किन्तु अधिकरण भेद से अभाव का भेद न मानने पर संयोगाभाव का अधिकरण जैसे गुण होता है, वैसे ही संयोगाभाव का अधिकरण द्रव्य भी होता है[174]। अतः संयोगवद्भिन्न में रहने वाला संयोगाभाव का अधिकरण द्रव्य को लिया जा सकता है, तादृश द्रव्य निरूपित वृत्तिता के द्रव्यत्व हेतु में विद्यमान रहने से उक्त स्थल में द्वितीय लक्षण के अनुसार अव्याप्ति होगी, तब उसके समाधानार्थ तृतीय लक्षण का उद्भावन किया जाता है।

मणिकार लिखते हैं - "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्" अर्थात् साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।

---

[173] व्या. प. वि. टी. पृ-६८

[174] द्रव्ये संयोगसामान्याभावे मानाभावात् - व्या. सि. ल. दी. पृ-६३

सद्धेतुस्थल 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' में साध्य - वह्नि, साध्यवत् - वह्निमत्, वह्निमत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव - वह्निमान् न, वह्निमान् न इस भेद का अधिकरण = जलह्रद, तन्निरूपितवृत्तिता मीनादिनिष्ठा, वृत्तित्वाभाव धूमनिष्ठा लक्षण समन्वय ।

घटप्रतियोगिकाभाव = घटोनास्ति। घटप्रतियोगिकान्योन्याभाव = घटो न।

असद्धेतु स्थल 'धूमवान् वह्नेः' में साध्य - धूम, साध्यवत् -धूमवत्, धूमवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव- धूमवान् न, धूमवान् न इस भेद का अधिकरण= अयोगोलक, तन्निरूपित वृत्तिता ही वह्नि में वृत्तित्वाभाव नहीं गया अतः नातिव्याप्ति।

मथुरानाथ कहते हैं - "अन्योन्याभावश्च प्रतियोगि अवृत्तित्वेन विशेषणीयः, तेन साध्यवतो व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववति हेतौर्वृतावपि नासम्भवः।" अगर ऐसा उपरलिखित लक्षण करेंगे तो असम्भव हो जायेगा तो कहीं भी लक्षण का समन्वय नहीं हो पायेगा।

लक्षण का स्वरूप -

"साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः"

साध्य - वह्नि, एकसत्त्वेऽपिद्वयं नास्ति, साध्यवत् - वह्निमत् घटोभय न इस भेद का अधिकरण पर्वत, पर्वत वह्निमान् होते हुए भी वह्निमत्घटोभय का उभय का भेद मिल जायेगा, तन्निरूपित वृत्तिता धूम में , वृत्तित्वाभाव नहीं गया अतः सर्वत्र असम्भव हो जायेगा। साध्य - वह्नि, साध्यवत् - वह्निमत्, वह्निमत् घटोभय न, एतद्भेद का अधिकरण पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता धूम निष्ठा, अतः असम्भव। उभयत्वाच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद लेकर सर्वत्र असम्भव हो जायेगा।

अब असम्भव वारण के लिये मथुरानाथ कहते हैं - "अन्योन्याभावश्च प्रतियोग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयाः" अर्थात् जो हम अन्योन्याभाव लिये हैं उसको प्रतियोगि में अवृत्ति होना चाहिए। यहाँ हमने अभाव लिया है -वह्निमान् घटोभय न , इसका प्रतियोगि वह्निमान् घटोभय,इस उभय में ही हमने वृत्ति बना दिया है किन्तु प्रतियोगि में अवृत्ति होना चाहिए। जो वह्निमान् है उसमें वह्निमान् घटोभय न ये भेद रहना चाहिए। ऐसा वह्न्याभाव वह्निमान् न यही होगा, उस भेद का अधिकरण जलह्रद तन्निरूपित वृत्तिता मीनादि निष्ठा वृत्तित्वाभाव धूम निष्ठा लक्षण समन्वय हो गया। अतः साध्यवन्निष्ठप्रतियोगिताक भेद में 'प्रतियोग्यवृत्तित्व' विशेषण देना आवश्यक है। तब

लक्षण का स्वरूप -

"प्रतियोग्यवृत्तिर्यः साध्यवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेदस्तदधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

पूर्वपक्षी दोषान्तर का उद्भावन करते हुए कहते हैं कि - "नन्वेवमपि नानाधिकरणकसाध्यके वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्याधिकरणीभूततत्तद्-व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तेरव्याप्तिर्दुर्वारा इति प्रतियोग्यवृत्तित्वमपहाय साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावविवक्षणे तु पञ्चमेन सह पौनरुक्त्यमिति ।"[175]

अर्थात् यदि लक्षण में 'प्रतियोग्यवृत्तित्व' विशेषण नहीं देंगे तब नानाधिकरणकसाध्यकस्थल [176] 'वह्निमान् धूमात्' में अव्याप्ति दोष का समाधान नहीं हो सकता। 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' नानाधिकरणकसाध्यकस्थल है। पर्वतीय वह्निमान् न, महानसीय वह्निमान् न, गोष्ठीय वह्निमान् न इत्यादि तत् वह्न्याभाव का अधिकरण पर्वत, महानस, गोष्ठ हो जायेंगे।

साध्य-वह्नि, साध्यवत्-वह्निमत्महानसं न इस भेद का अधिकरण पर्वत हो जायेगा, तन्निरूपित वृत्तिता धूम निष्ठा, वृत्तित्वाभाव न विद्यमान होने से अव्याप्ति। द्वित्वावच्छिन्न जो अभाव वह्निमान् घटो न एतत् उभयाभाव का अधिकरण पर्वत में लेकर अव्याप्ति परिहार करने के लिये 'प्रतियोग्यवृत्ति' विशेषण दिया गया। ये विशेषण देने पर भी तत् वह्निमान् न ये भेद ले सकते हैं,और अव्याप्ति होगी। साध्याधिकरणीभूततत्तत्तद्-व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववति हेतोर्वृतेरव्याप्तिः -वह्न्यधिकरणीभूत पर्वत में तत् व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव ले लेंगे। महानसीय वह्निमान् न चत्वरीयवह्निमान् न इस भेद का अधिकरण पर्वत महानस हो जायेगा तन्निरूपित वृत्तिता धूमनिष्ठा वृत्तित्वाभाव नहीं गया अव्याप्ति।

तब एतादृश अव्याप्ति वारण के लिये 'प्रतियोग्यवृत्ति' विशेषण हटाकर प्रतियोगिता में 'साध्यवत्त्वावच्छिन्नत्व' इस विशेषण का उपादान करेंगे। "साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव" ऐसा कहना ही पडेगा।

तब लक्षण का स्वरूप -

"साध्यवत्त्वेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यवत्त्वावच्छिन्नसाध्यवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेदाधिकरणनिरूपित-वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।"

अब ऐसा लक्षण करने पर 'वह्निमत्महानसं न' यह भेद लक्षण घटक नहीं होगा, क्योंकि तादृश भेद की प्रतियोगिता वह्निमत्व से इतर महानसत्व धर्म से भी अवच्छिन्ना है। लक्षण घटक भेद

---

[175] क्रोडपत्रम्।

[176] जिस स्थल का साध्यतावच्छेदकविशिष्ट साध्य का अधिकरण अनेक होते हैं उसको नानाधिकरणकसाध्यकस्थल कहते हैं, यथा -'पर्वतो वह्निमान् धूमात्।'

तो मात्र 'वह्निमान् न' अर्थात् वह्निमत्त्वावच्छिन्नसकलवह्निमान् उसका भेद का अधिकरण तो जलह्रद ही होगा, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादिनिष्ठा वृत्तित्वाभाव धूम में विद्यमान होने से अव्याप्ति का वारण हो जायेगा।

मूल लक्षण में 'साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद' विशेषण देने पर पञ्चम लक्षण में भी 'साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद' के निवेश होने से पुनरुक्ति दोष हो जायेगा।[177] अर्थात् पञ्चम लक्षण और तृतीय लक्षण एक हो गया । तब पञ्चम लक्षण के साथ पुनरुक्तिदोष वारणार्थ तृतीय लक्षण में 'साध्यवत्त्वावच्छिन्न' विशेषण का उपादान नहीं करेंगे। अतः 'साध्यवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेदाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः' यही लक्षण स्वीकार करेंगे। जिस प्रकार से आचार्य को केवलान्वयिसाध्यकस्थल 'इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्' में पाँचों लक्षणों की अव्याप्ति स्वीकृत है, उसी प्रकार ग्रन्थकार तृतीय लक्षण का नानाधिकरणसाध्यकस्थल 'वह्निमान् धूमात्' में अव्याप्ति स्वीकार्य ही है।

पूर्वपक्षी लोग केवलान्वयिसाध्यकस्थल में अव्याप्ति दोष न होने की आशंका करते हैं -

साध्यवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेद कहने से "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" केवलान्वयिसाध्यकस्थल में अव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि 'घटीयवाच्यत्वाद् न' का भेद पटादि में प्रसिद्ध होने से तन्निरूपित वृत्तिता पटत्व में वृत्तित्वाभाव ज्ञेयत्व में लक्षण समन्वय हो गया। अतः केवलान्वयि स्थल में अव्याप्ति देना उचित नहीं है, तथा केवालन्वयि स्थल को दृष्टान्त बनाकर 'वह्निमान् धूमात्' में अव्याप्ति दिखाना सम्यक् प्रतीत नहीं होता।

तब उत्तरपक्षी कहते हैं - "तादृशान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वेऽपि तद्वति हेतोर्वृतेरेवऽव्याप्तेर्दुर्वारत्वात्।" अर्थात् 'घटीयवाच्यत्वाद् न' का भेद पटादि में प्रसिद्ध होने से भी तादृशभेदाधिकरणपटादिनिरूपित वृत्तिता ही हेतु ज्ञेयत्व में होने के कारण अव्याप्ति का वारण नहीं हो सकता।

पुनः कछेक आचार्य विकल्पान्तर से समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करते हुये कहते हैं कि पञ्चम लक्षण में साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वेन तादृशभेदवत् का प्रवेश है, तथा तृतीय लक्षण में साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरणत्वेन तादृशभेदाधिकरण का प्रवेश

[177] साध्यवत्प्रतियागिकान्योन्याभावपदेन साध्यवत्वावच्छिन्नप्रतियोगि कान्योन्याभाव एव विवक्षितः, माथुरी ।

हैं।[178] अतः तृतीय लक्षण में अधिकरणत्व का प्रवेश तथा पञ्चम लक्षण में अधिकरणत्व का अप्रवेश होने से वैलक्षण्य है। पञ्चम लक्षण में अधिकरणत्व के प्रवेश न होने से अधिकरणत्वांश व्यर्थ हो जायेगा ? तब कहते हैं कि 'साध्यवत्त्वावच्छिन्नसाध्यवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेदाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव' यह अखण्डाभाव है, और तादृश अखण्डाभाव का घटक होने से अधिकरणत्वांश व्यर्थ नहीं हो सकता है।

आचार्यों का मत विशेष :-

दीधिति तथा जागदीशी का मत विशलेषण :-

तृतीय लक्षण के उद्भावन में बीज प्रदर्शन करते हुए दीधितिकार कहते हैं कि - कर्म में रहने वाला संयोगाभाव, गुण में रहने वाला संयोगाभाव, द्रव्य में रहने वाला संयोगाभाव, इनके भेद होने में कोई प्रमाण नहीं है।[179] अभिप्राय यह है कि दीधितिकारोक्त कर्मपद द्रव्यभिन्नपरक आदि पद से इस प्रकार अर्थ का तात्पर्य का ग्राहक है। अर्थात् द्रव्यभिन्नवृत्ति संयोगाभाव , द्रव्यवृत्तिसंयोगाभाव दोनों भिन्न है। इसमें कोई प्रमाण नहीं है।[180] दोनों को अभिन्न मानकर द्वितीय लक्षण में "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इस स्थलीय हेतु में द्वितीय लक्षण में की अव्याप्ति की प्रसक्ति होगी। क्योंकि कपिसंयोगवद्भिन्न गुणवृत्ति जो साध्यभाव = कपिसंयोगाभाव उस कपिसंयोगाभाव का अधिकरण एतद्वृक्षात्मक द्रव्य होंगे। तन्निरूपित वृत्तिता ही एतद्वृक्षत्व में विद्यमान होने से अव्याप्ति होगी।

इस अव्याप्ति के परिहार के लिए अन्योन्याभाव घटित तृतीयलक्षण का उद्भावन किया गया। लक्षण का स्वरूप - "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्"। अर्थात् "साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।" "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" सद्धेतुकस्थल में तृतीय लक्षण को स्वीकार करने पर अव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि साध्य-कपिसंयोग, साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव-कपिसंयोगवान् न, इस भेद का

---

[178] न चैवं पञ्चमाभेदः, तत्र साध्यवत्त्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकान्योन्याभाववत्त्वेन प्रवेशः, अत्र तु तादृशान्योन्याभावाधिकरणत्वेन इत्यधिकरणत्वप्रवेशाप्रवेशाभ्यामेव भेदात् । माथुरी।

[179] कर्मादौ संयोगाद्यभावस्य भिन्नत्वे मानाभावादाह, व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१००

[180] द्रव्यनिष्ठसंयोगाभावतो भिन्नत्व इत्यर्थः। मानाभावादिति। व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१००

अधिकरण गुणादि में, तन्निरूपित वृत्तिता गुणत्व में वृत्तित्वाभाव एतद्वृक्षत्व में अतः उक्त लक्षण की एतद्वृक्षत्व में अव्याप्ति नहीं होगी। इस पर जगदीशतर्कालङ्कार केवल अव्याप्यवृत्तिसाध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति परिहार करने के लिए तृतीय लक्षण का उद्भावन किया गया है। इस प्रकार का प्रतिपादन उनके ग्रन्थ स्वारस्य से प्राप्त होता है।[181]

गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण :-

तृतीय लक्षण के उद्भावन में दीधितिकार ने जो कहा उसी को आधार मानकर ही गदाधरभट्टाचार्य ने भी तृतीय लक्षण के निरूपण में बीज प्रदर्शित किया है। अर्थात् द्रव्यवृत्तिसंयोगाभाव गुणकर्मवृत्तिसंयोगाभाव दोनों भिन्न है। इसमें कोई प्रमाण न होने से द्वितीय लक्षण में "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" एतद्स्थलीय एतद्वृक्षत्व हेतु में अव्याप्ति होगी, उस अव्याप्ति परिहार करने के लिए तृतीयलक्षण का उद्भावन किया गया है।
अर्थात् अव्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थल में अव्याप्ति परिहारार्थ तृतीयलक्षण के निरूपण में प्रयोजन प्रदर्शित किया गया है।[182] दीधितिकार ने गुणवृत्तिसंयोगाभाव एवं कर्मवृत्ति संयोगाभाव के भेद होने में कोई प्रमाण नहीं है इसके विवेचन अवसर में यद्यपि निरुक्त अभावों के समनियत होने पर अभेद प्रतीत होता है। तथापि द्रव्यवृत्तिसंयोगाभाव गुणवृत्तिसंयोगाभाव दोनों में भिन्नता है। उसको सप्रमाण गदाधरभट्टाचार्य ने विचार किया है। [183]

कालीशङ्कर का अभिमत:-

पूर्व लक्षण के सन्दर्भ में, इस प्रकार प्रकार द्वितीय लक्षण के विवरण में दीधितिकार की जो व्याख्या प्रस्तुत है उसी व्याख्या को आधार बनाकर जगदीशतर्कालङ्कार ने जो अपने विचार प्रस्तुत किये हैं उसके ऊपर कोई व्याख्या की आवश्यकता नहीं है इसको ध्यान में रखते हुये कालीशङ्कर ने भी कोई व्याख्या नहीं की है।

---

[181]तथाचात्राव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतावव्याप्तिरितिभावः, व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१००

[182] संयोगाभावनिष्ठयोर्व्याप्यवृत्तित्वाव्याप्यवृत्तित्वयोः
प्रतियोगिसामानाधिकरण्यप्रतियोगिवैयधिकरण्योर्वक्ष्यमाणरीत्या न विरोध
इत्यभिप्रायेणाव्याप्यवृत्तिसाध्यकस्थलेऽव्याप्त्या लक्षणान्तरमवतारयति 'कर्मादौ' इति।

[183] तादृशाभावानां समनियततयाऽभेदात्। एवञ्च द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावगुणवृत्तिसंयोगाभावयोर्भेदः सप्रमाण एव ।

चतुर्थ अध्याय
व्याप्ति का चतुर्थलक्षण

चतुर्थ लक्षण के उद्भावन में बीज :-

तृतीय लक्षण के अनन्तर आचार्य गङ्गेशोपाध्याय व्यतिरेकव्याप्ति घटित चतुर्थलक्षण का प्रतिपादन करते हैं। व्याप्ति का चतुर्थलक्षण "सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्" जिस लक्षण में सकल पद का "यावत्" अर्थ करते हैं तथा यावत् पद साध्याभाववत् में विशेषणत्वेन प्रतिभासित होता है।[184] उसके अनन्तर चतुर्थलक्षण का स्वरूप "यावन्ति साध्याभावाधिकरणानि तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्" होता है। सद्धेतुसाध्यक स्थल 'वह्निमान्

[184] साकल्यं साध्याभाववतो विशेषणम्। यावन्ति साध्याभावाधिकरणानि तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वं हेतोर्व्याप्तिरित्यर्थः

धूमात्' में साध्य-वह्नि, साध्याभाव-वह्न्याभाव, यावदधिकरण जलह्रदादि, तन्निष्ठाभाव=धूमाभाव, तत्प्रतियोगित्व धूमनिष्ठा अतः लक्षणसमन्वयः। पुनः 'धूमवान् वह्नेः' में साध्य-धूम, साध्याभाव-धूमाभाव, यावदधिकरण अयोगोलक, तन्निष्ठाभाव से वह्न्याभाव नहीं प्राप्त होता अतः तत्प्रतियोगित्व लक्षण के वह्नि में न होने से असद्धेतुसाध्यक स्थल में लक्षण न जाने से नातिव्याप्तिः।

यावत् पद का प्रयोजनः-

यावत् पद का प्रयोजन दर्शाते हुए कहते हैं कि - असद्धेतुक स्थल "धूमवान् वह्नेः" में साध्य - धूम, साध्याभाव -धूमाभाव, तदधिकरण जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता मीनादिनिष्ठा वृत्तित्वाभाव वह्नि में होने से अतिव्याप्ति होगी। तब यावत् पद का उपादान करना आवश्यक है। अतः यावत् पद का उपादान करने से साध्याभाव-धूमाभाव का यावदधिकरण जलह्रद न होकर अयोगोलक होगा तन्निरूपित वृत्तिता ही वह्नि में विद्यमान होने से, वृत्तित्वाभाव की अविद्यमानता अतः -नातिव्याप्ति।

यदि यावत् पद विशेषणत्वेन साध्याभाववत् में प्रतीत न होकर साध्याभाव में इसकी प्रतीति होगी तो असम्भव दोष की प्रसक्ति होगी। साध्याभाव=साध्यप्रतियोगिकाभाव, साध्यप्रतियोगिक अभाव =वह्निर्नास्ति यह अभाव अभिमत होता है। तथा तद्स्वरूप 'तद्ह्रदावृत्तिर्नास्ति' यह अभाव भी प्राप्त होता है। अतः यावत् साध्याभाव का कोई एक ही अधिकरण अप्रसिद्ध हो जाने से असम्भव दोष प्रसक्त होगा। इस कारण से साध्याभाव में यावत् पद का विशेषण देना अनुचित तथा साध्याभाववत् में विशेषण देना ही श्रेयस्कर है।

पुनः आचार्य "द्रव्यं सत्त्वात्" स्थल में दोषोद्भावनपूर्वक समाधान प्रस्तुत करते हैं।

साध्य-द्रव्य, साध्याभाव-द्रव्यत्वाभाव, तदधिकरण-गुण, तन्निरूपितवृत्तिता गुणत्वनिष्ठा वृत्तित्वाभाव विशिष्टसत्तानिष्ठा। "विशिष्टंशुद्धान्नातिरिच्यते" न्याय द्वारा विशिष्टसत्ता और शुद्धसत्ता एक स्वीकार करने पर वृत्तित्वाभाव गुणादिनिष्ठा होने से अतिव्याप्ति होती है। इस दोष के वारणार्थ आचार्य व्याप्तिलक्षण में परिष्कार करते हैं - "सकलसाध्याभावाधिकरणनिष्ठाभावप्रतियोतावच्छेदकहेतुतावच्छेदकत्वत्वं व्याप्तिः"। ऐसा लक्षण स्वीकार करने पर विशिष्टसत्ता और शुद्धसत्ता का ऐक्य प्रतिपादित नहीं होता है, जिससे द्रव्यत्वाभावाधिकरण गुण, तन्निरूपितवृत्तित्वाभाव विशिष्टसत्ता, सत्तात्वरूप से हेतुतावच्छेदक न होने से अतिव्याप्ति नहीं होगी।

साध्याभाव का परिष्कार:-

साध्याभाव अर्थात् साध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव।[185] सद्धेतुस्थल "वह्निमान् धूमात्" में साध्य-वह्नि, साध्याभाव-वह्न्याभाव यहाँ वह्न्याभाव से महानसीयवह्निर्नास्ति, वह्निघटोभयं नास्ति, समवायेन वह्निर्नास्ति इन सभी अभावों का ग्रहण कर, तादृश अभावों का अधिकरण पर्वत, तन्निरूपित वृत्तिता ही संयोगेन धूम में विद्यमान है, धूमाभाव अविद्यमान होने से असम्भव दोष प्रसक्त होता है। अतः साध्याभाव पद से 'साध्यसामान्याभाव' अर्थात् 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव' अधिगम करना चाहिए।

संयोगेन वह्निर्नास्ति यह अभाव का अधिकरण जलह्रद तन्निरूपित वृत्तिता मीनादिनिष्ठा, वृत्तित्वाभाव धूमनिष्ठा अतः लक्षणसमन्वयः।

पुनः पूर्वपक्षी द्वारा सद्धेतुक स्थल में दोषोद्भावन कर सिद्धान्तपक्षी द्वारा निराकरण दिखाते हैं- "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" स्थल में साध्य- कपिसंयोग, साध्याभाव- कपिसंयोगाभाव,- तदधिकरण मूलावच्छेदेन एतद्वृक्ष, तन्निरूपितवृत्तिता ही एतद्वृक्षत्व में विद्यमान है वृत्तित्वाभाव अविद्यमान होने से अव्याप्ति हुई। तादृश अव्याप्ति दोष परिहारार्थ सिद्धान्तपक्षी साध्याभावाधिकरणता को किञ्चिदनवच्छिन्न अर्थात् निरवच्छिन्न अधिकरणत्व का होना मानते है। ऐसा कहने से कपिसंयोगाभाव का निरवच्छिन्नाधिकरण एतद्वृक्षत्व न होकर गुणादि होगें, तन्निरूपित वृत्तिता गुणत्वनिष्ठा वृत्तित्वाभाव एतद्वृक्षत्व में विद्यमान होने से लक्षणसमन्वय हो गया।

तब लक्षण का स्वरूप -

"साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न- साध्यतावच्छेदकवच्छिन्न प्रतियोगिताक यः साध्याभावः तस्य निरवच्छिन्नाधिकरणानि तन्निष्ठाभाव हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्वं व्याप्तिः।"

---

[185] साध्याभावश्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताको ग्राह्यः, अन्यथा पर्वतादावपि वह्न्यादेर्विशिष्टाभावादिसत्त्वेन समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नवह्न्यादिसामान्याभावसत्त्वेन च यावदर्तगततया तन्निष्ठाभाव प्रतियोगित्वाभावाद धूमस्याऽसम्भवः स्यात् । माथुरी।

ऐसा लक्षण स्वीकार करने पर भी "कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्" स्थल में अव्याप्ति दोष का उद्भावन करते हैं - साध्य-कपिसंयोगाभाव, साध्याभाव-कपिसंयोगाभावाभाव अर्थात् कपिसंयोगस्वरूप, तद्विरवच्छिन्नाधिकरण ही अप्रसिद्ध है अतः अव्याप्ति।

इसके समाधानोत्तर में गङ्गेशोपाध्याय कहते हैं कि यह केवलान्वयि साध्यकस्थल होने के कारण अव्याप्ति स्वीकृत ही है। इसकी पुष्टि आचार्य स्वयं ही करते हैं।

एतत् लक्षण स्वीकार करने पर भी "पृथिवी कपिसंयोगात्" स्थल में अतिव्याप्ति होती है। साध्य-पृथिवीत्व, साध्याभाव-पृथिवीत्वाभाव, तदधिकरण जल, तन्निरूपितवृत्तिता जलत्वनिष्ठा, वृत्तित्वाभाव कपिसंयोग में होने से अतिव्याप्ति। तादृश दोष निवारणार्थ 'साध्याभावाधिकरण' में वृत्ति अभाव को 'निरवच्छिन्नवृत्तिमान्' का होना आवश्यक है। तब पृथिवीत्वाभाव का अधिकरण जल में कपिसंयोगाभाव निरवच्छिन्न वृत्तिमान् नहीं होने से तादृश अभाव को ग्रहण नहीं कर सकते, किन्तु जल में निरवच्छिन्नव-वृत्तिमान् अभाव घटत्वाभावादि होगें, तादृश अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक हेतुतावच्छेदक न होने से अतिव्याप्ति नहीं होगी।

अन्योन्याभाव को व्याप्यवृत्ति एवं अव्याप्यवृत्ति स्वीकार करने वालों के मत में -

प्रथम अन्योन्याभाव को व्याप्यवृत्ति स्वीकार करने पर "द्रव्यत्वाभाववान् संयोगवद्भिन्नत्वात्" सद्हेतु स्थल में अव्याप्तिदोष होता है। साध्य-द्रव्यत्वाभाव, साध्यभाव-द्रव्यत्वाभावाभाव, द्रव्यत्वस्वरूप, तद्वत् द्रव्य, तन्निष्ठाभाव संयोगवद्भिन्नाभाव (अन्योन्याभावस्यभाव = प्रतियोगिवच्छेदकस्वरूप) स एव प्रतियोगितावच्छेदकं तस्य निरवच्छिन्नाधिकरणतायाः अप्रसिद्धत्वात् भवति अव्याप्ति।

सकल पद का प्रयोजन :-

मूल लक्षण में आये हुये सकल पद का अर्थ 'अनेक' करते हैं।[186] यदि 'अनेक' अर्थ स्वीकार करेंगे तब "एतद्रूपवान् एतद्रसात्", "एतद्घटत्वाभाववान् पटत्वात्" इत्यादि स्थलों में अव्याप्ति होगी।

साध्य-एतद्घटत्वाभाव, साध्याभाव-एतद्घटत्वाभावाभाव एतद्घटत्वस्वरूप, साध्याभाववत्-एतद्घट, तत्र यावत् अधिकरणस्य अप्रसिद्धत्वात् भवति अतिव्याप्तिः।

---

[186] वस्तुतस्तु सकलपदमत्राशेषपरम्, न त्वनेकपरम्।

अतः सकल पद का अर्थ 'अनेक' अर्थ न करके 'अशेष' अर्थ करना उचित प्रतीत होता है। अशेष अर्थात् 'व्यापक'।

आचार्यों का मत विशेष :-

दीधिति तथा जागदीशी का मत विशलेषण :-

प्रथम लक्षण में निरवच्छिन्न अधिकरण के अप्रसिद्ध होने से कारण "कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्" स्थल में अव्याप्ति प्रदर्शित की गई है। उस स्थल को ग्रन्थकार केवलान्वयि स्थलीय हेतु की तरह दोष स्वीकार करते हैं। अतः निरवच्छिन्न अधिकरणत्व के अप्रविष्ट होने से "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" एतद् स्थलीय हेतु में प्रथम लक्षण की अव्याप्ति होगी । इसके वारणार्थ द्वितीय लक्षण का उद्भावन एवं गुणवृत्ति कपिसंयोगाभाव, द्रव्यवृत्ति कपिसंयोगाभाव इन दोनों को अभिन्न मानकर द्वितीय लक्षण की एतद्वृक्षत्व हेतु में जो अव्याप्ति है उसको वारण करने के लिए तृतीय लक्षण का उद्भावन किया गया। तृतीय लक्षण के अनन्तर चतुर्थ लक्षण के उद्भावन में क्या बीज है? ऐसी जिज्ञासा को हृदय में रखते हुये दीधितिकार कहते हैं - हेतु के साध्यवत् पक्ष भिन्न दृष्टान्त वृत्ति होने पर तृतीय लक्षण में अव्याप्ति होगी।[187] अभिप्राय यह है कि "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इत्यादि नानाधिकरणक साध्यकस्थल में तृतीय लक्षण की अव्याप्ति होगी, क्योंकि वह्निमत् पर्वत भिन्न महानसादि में धूम के विद्यमान होने से अव्याप्ति अर्थात् वह्निमत् पर्वत भिन्न दृष्टान्तभूत महानस में हेतु के विद्यमान होने से अव्याप्ति । उस अव्याप्ति के परिहार के लिए चतुर्थ लक्षण का उद्भावन किया गया ।

लक्षण का स्वरूप है -

"सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्" उक्त लक्षण के विचार प्रसङ्ग में जगदीशतर्कालङ्कार यह कहते हैं कि साध्यवत्प्रतियोगिक अन्योन्याभाव के केवलान्वयि होने से असम्भव कहना चाहिए था। दीधितिकार ने क्यों अव्याप्ति का प्रतिपादन किया है।

इसके समाधान में जगदीश कहते हैं - "वह्निमान् गगनात्"[188] इस स्थल में वह्निमत् घटोभयभेद का साध्यवत्प्रतियोगिक अन्योन्याभावरूप होने से तदधिकरण में अवृत्ति गगन हेतु होता है,

---

[187] हेतोः साध्यवत्पक्षभिन्नदृष्टान्तवृत्तित्वेनाव्याप्तेराह, व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१०१

[188] न च साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावस्य केवलान्वयित्वादसम्भव एव वक्तुमुचितो नाव्याप्तिरिति वाच्यम्, वह्निमान् गगनादित्यवावृत्तिगगनादौ लक्षणसम्भवेन तस्यापि सद्धेतुतायाः स्वयं वक्ष्यमाणात्वादिति भावः। व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१०१

इसीलिए उन्होंने असम्भव न कहकर अव्याप्ति कहा है। उक्त स्थल को लक्ष्य न मानकर दोष का उद्भावन करना समीचीन नहीं है। इस प्रकार कथन भी समुचित नहीं है, क्योंकि स्वयं दीधितिकार ने भी उस लक्ष्य को मानकर ही अव्याप्ति प्रदर्शित किया है। साध्याभावादि पदों का परिष्कार प्रथम लक्षण के सदृश ही समझना चाहिए।

साकल्यपद साध्याभाववत् में विशेषण दिया गया है। ऐसा जगदीश का मत है। किन्तु यदि साकल्यपद साध्यभाववत् में विशेषण देते हैं तो एकव्यक्तिसाध्यकस्थल में "तद्रूपवान् तद्रसात्" नानाधिकरण के अप्रसिद्ध होने पर अव्याप्ति की प्रसक्ति होगी वह कथन भी समीचीन नहीं है। वहाँ पर व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नत्व विशेषण देकर दोष का समाधान किया जा सकता है। अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुक "अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इत्यादि स्थलों में अव्याप्ति परिहार करने के लिए लक्षण घटक अभावद्वय में प्रतियोगिव्यधिकरणत्व विशेषण देना आवश्यक है।[189]

इस प्रकार का चिन्तन एवं इस पर जो व्याख्यान कौशल है, वह अत्यन्त रमणीय है।

गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण :-

चतुर्थलक्षण व्यतिरेक व्याप्ति घटित लक्षण है- "सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्" हेतु में साध्यवत् पक्षभिन्न दृष्टान्त वृत्ति होने से जो "वह्निमान् धूमात्" इत्यादि स्थलों में अव्याप्ति प्रसक्ति होती है। उसके वारणार्थ सकलसाध्याभाव इत्यादि चतुर्थलक्षण का उद्भावन किया गया है। किन्तु "एतद्रूपवान् एतद्रसात्" इत्यादि स्थलों में नानाधिकरण के अप्रसिद्ध होने पर जो अव्याप्ति हुई, उस अव्याप्ति के परिहारार्थ तद्भिन्नत्वेन लक्षण का निवेश करना ही पडेगा । "वह्निमान् धूमात्" इत्यादि स्थलों में तद्तद् ह्रदवृत्तित्वरूप से वह्याभाव को लेकर जो असम्भव होगा उस असम्भव को वारण करने के लिये साध्याभाववत् में साकल्यपद का विशेषण देना होगा। अन्यथा यत्किञ्चित् व्यक्तिनिष्ठ अथवा प्रतियोगित्व को लेकर के नानाधिकरणकसाध्यकसद्धेतु में लक्षण समन्वय होने पर भी साध्याभाववत् में साकल्यपद का विशेषण रूप से प्रयोजन का अभिधान किया गया है।[190] दीधितिकार ने साध्य में साध्याभाववत्

---

[189] अव्याप्यवृत्तिसाध्यकव्याप्यवृत्तिसद्धेतावव्याप्तेर्व्यभिचारिणि चाव्याप्यवृत्तावतिव्याप्तेर्वारणाय-अभावद्वये प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं बोध्यम्। व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१०९-११०

[190] अत्र साध्याभाववति साकल्यविशेषणसत्त्व एव साध्ये तद्विशेषणव्यावृत्तिः सङ्गच्छते, अन्यथा साध्याभाववत्तायाहेतुमत्साधारणेऽपि साध्याभाववद्यत्किञ्चिद्व्यक्तिनिष्ठाभावप्रतियोगित्वमादाय नानाव्यक्तिसाध्यकसद्धेतौ लक्षणसमन्वयसम्भवादतः साध्ये तदभाववति चेत्यनुक्त्वा साध्याभाववति साकल्यविशेषणं प्रथमतो दर्शितम् ।

में साकल्य का जो विशेषण दिया है वहाँ पर साध्याभाव साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक रूप से ग्रहण करना चाहिये।[191] वस्तुतः व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व रूप से अभाव विशेषण देने पर "वह्निमान् धूमात्" एतद् स्थल में अव्याप्ति वारण सम्भव होने पर भी "वह्निधूमोभयाभाववान् वह्नेः" एतद् स्थल में अतिव्याप्ति परिहारार्थ साध्याभाववत् में विशेषण देना आवश्यक है।[192] "कपिसंयोगगी एतद्वृक्षत्वात् " इस स्थल में अव्याप्ति परिहारार्थ लक्षणघटक अभावद्वय में प्रतियोगिव्यधिकरण का भी विशेषण देना आवश्यक है।[193] हेत्वभाव भी प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिव्यधिकरण के रूप में -समभना चाहिये उसमें जो प्रतियोगित्व है उसको भी हेतुतावच्छेदक रूप से ग्रहण करना आवश्यक है। अन्यथा "विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते" न्याय द्वारा विशिष्टसत्ता शुद्धसत्ता को एक समझकर "द्रव्यं विशिष्ट सत्त्वात्" इस स्थल में अव्याप्ति होगी, इस कारण से प्रतियोगित्व को हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न हेतु के रूप में ग्रहण करना आवश्यक है।[194]

कालीशङ्कर का अभिमतः-

चतुर्थलक्षण के सन्दर्भ में कालीशङ्कर का विचार है - "सकलसाध्याभावन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्" यह मणिकार द्वारा विरचित व्याप्ति का चतुर्थ लक्षण है। उक्त लक्षण में साकल्यपद साध्याभाववत् में विशेषण है। ऐसा मथुरानाथ का कथन है किन्तु दीधितिकार साध्याभाववत् एवं साध्य में विशेषण ऐसा कहते हैं [195] अभिप्राय यह है कि साध्याभाववत् में साकल्यपद का विशेषण देने मात्र से ही साध्य में भी प्रसिद्ध हो जायेगी, इसीलिए साध्याभाववत् में साकल्य का

---

[191] 'साध्ये तदभाववति च बोध्यम्' इत्युक्त्वा 'साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको वाऽभावो ग्राह्यः, इत्युक्तौ साध्याभाववति च साकल्यं निवेश्यते।

[192] साध्याभाववति साकल्यविशेषणप्रयोजनमाह, 'विपक्ष' इति।

[193] अभावद्वये प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं बोध्यम् - दीधितिकार

प्रतियोगिवैयधिकरण्यञ्च न प्रतियोग्यधिकरणावृत्तित्वम्, अव्याप्यवृत्तिसाध्यके तथाविधहेतुके च तादृशसाध्याभावहेत्वभावाप्रसिद्ध्याऽव्याप्तेरपि तु प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वम्, तथा च प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभावाधिकरणेषु यावत्सु प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टः सन् वर्तते योऽभावस्तत्प्रतियोगित्वमर्थः।- गादाधरी

[194] हेत्वभावनिष्ठप्रतियोगिवैयधिकरण्यशरीरे स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नत्वनिवेशस्य प्रयोजनमाह, 'द्रव्यत्वादौ' इति। 'विशिष्ट' इति। गुणकर्मान्यत्वविशिष्टेत्यर्थः। गादाधरी

[195] साकल्यं साध्याभाववति साध्ये च बोध्यम्। व्याप्तिसप्तकसारः,२२९।

विशेषण देना संगत है। ऐसा प्राचीन आचार्यों का कथन है। यह मत भी सर्वथा युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि "गगनावृत्ति धर्मवान् द्रव्यत्वात्" यहाँ साध्याभाववत् में साकल्यपद के विशलेषण मात्र स्वीकार करने पर अव्याप्ति होगी । इस अव्याप्ति के परिहारार्थ साकल्यपद का साध्याभाववत् जैसे विशेषण देना आवश्यक है, उसी प्रकार साध्य में भी विशेषण देना आवश्यक है।[196] यहाँ पर यह समझना चाहिए कि साध्य में साकल्यपद का विशेषण देना आवश्यक है इसी प्रकार जगदीश के कथन के ऊपर यह प्राचीनों का कथन है। उपर्युक्त में अतिव्याप्ति के लिये साध्य में साकल्य पद का विशेषण देना संगत है, जो कि प्रचीनों का मुख्य आशय है। यदि हम "गगनैतद्-रूपोभयवान् एतद्रसाद्" इस प्रकार स्थल में साध्याभाववत् में साकल्य के विशेषण देने पर भी अतिव्याप्ति सम्भव है तो उसके वारणार्थ साध्य में भी विशेषण देना आवश्यक है। साध्य में साकल्य का विशेषण देने पर "एतद्-घटावृत्तित्वावच्छिन्नाभाव तद्रूपगगनान्यतराभाव" को लेकर अतिव्याप्ति वारण सम्भव है इसीलिए साध्य में साकल्य पद विशेषण देना उचित है।[197] गदाधरभट्टाचार्य का कथन है साध्याभाव साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिता का ग्रहण करना चाहिये। ऐसा कहने पर साध्याभाववत् में साकल्य विशेषण का सान्निध्य प्राप्त होने पर संशय की अनुपपत्ति होगी। अतः साध्याभाववत् में एवं साध्य में साकल्यपद का विशेषण देना अभिमत है ऐसा भट्टाचार्य का कथन है।[198] जगदीश का कथन है साध्यप्रतियोगिक अभाव के अधिकरण के अप्रसिद्ध होने पर व्यभिचारी मात्र में अतिव्याप्ति परिहार करने के लिए साध्याभाव का विशेषण साकल्य को माना जाया "वह्निमान् धूमात्" इस स्थल में अव्याप्ति होगी। उस अव्याप्ति के परिहारार्थ साकल्य का साध्याभाववत् में विशेषण देना उचित है।[199] जगदीश तर्कालङ्कार ने मणि युक्त चतुर्थ लक्षण के विवरण में जो विवेचन

---

[196] गगनवृत्तिधर्मवान् द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तेरिति जगदीशः। गगनावृत्तिधर्मवान् द्रव्यत्वात् इत्यत्रातिव्याप्तिवारणाय साकल्यस्य साध्यांशे विशेषणत्वेऽपि धूमवान् वह्नेरित्यादावतिव्याप्तिवारणासम्भव इति सर्वत्रातिव्याप्तिवारणार्थं साध्याभाव एव विशेषणं देयमिति, क्रोडपत्रम्।

[197] तत्र साध्ये साकल्यविशेषणासत्त्वेऽपि एतद्घटावृत्तित्वावच्छिन्नाभावं तद्द्रूपगगनान्यतराभावं चादायातिव्याप्तिवारणसम्भवेन तस्यावान्तरफलत्वाभावात्, साध्याभाववति साकल्यविशेषणेन यत्फलं न भवति तस्यैव साध्ये साकल्यविशेषणस्य फलत्वात् । क्रोडपत्रम्।

[198] वस्तुतस्तु साध्याभाववतीत्युक्ता साध्याभावो वा साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको ग्राह्य इत्युक्तौ साध्याभावो वेत्यनेन सह साध्याभाववति साकल्यविशेषणस्यापि सान्निध्येन वैकल्पिकसंशयः स्यात् स च नावगच्छेत् अतः साध्याभाववति साध्ये चेत्युक्तमिति गदाधरभट्टाचार्यः। क्रोडपत्रम्।

[199]सकलस्य साध्यप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणाप्रसिद्ध्या व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिवारणार्थं यदि साध्याभावस्य विशेषणं साकल्यं तदा वह्निमान्धूमादावव्याप्तिस्तत्रापि सपक्षावृत्तित्वावच्छिन्नाभावस्य

किया है उसके समस्त विवरण को कालीशंकर प्रस्तुत करते हुए दीधिति उक्त साकल्य पद का विशेषण साध्य में संगत है या साध्याभाववत् में संगत है, इसके विचार को प्रस्तुत करते हुए जगदीश मत को सर्वथा युक्ति-युक्त माना है। ऐसा प्रतिपादन किया है। "सकलसाध्याभावनिष्ठाभावप्रतियोगित्वम्" इस प्रकार लक्षण में साध्याभाव का जो व्यापक हेत्वभाव है वह व्यापकता प्रतियोगि वैयधिकरण घटित होना चाहिए अन्यथा "कपिसंयोगी एतत्वृक्षत्वात्" में एतत्वृक्षत्ववान् कपिसंयोगात् एतत् स्थल में अव्याप्ति की प्रसक्ति होगी। इन अव्याप्ति परिहारार्थ साध्याभाव की व्यापकता हेत्वभाव में प्रतियोगिवैयधिकरण घटित होना आवश्यक है।[200]

पञ्चम अध्याय
व्याप्ति का पञ्चमलक्षण

पञ्चम लक्षण के उद्भावन में बीज :-

आचार्य गङ्गेशोपाध्याय चतुर्थलक्षण के अनन्तर पञ्चम लक्षण का उपादान 'साध्यवदन्यावृत्तित्वम्' के रूप में करते हैं ।

'साध्यवदन्यावृत्तित्वम्' अर्थात् साध्याधिकरण से भिन्न निरूपित अवृत्तिता जो हेतुनिष्ठ है उसी को व्याप्ति कहते हैं, जैसे "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" सद्धेतु स्थल में, साध्य-वह्नि, साध्यवत् - पर्वत, अर्थात् साध्याधिकरण = वह्न्याधिकरण =पर्वत, तद्भिन्न - जलह्रद, तन्निरूपित वृत्तिता मीनशैवालादि निष्ठा, वृत्तित्वाभाव हेतुनिष्ठ अवृत्तिता को व्याप्ति कहते हैं। इस प्रकार प्रथम के समान ही हेतु में 'साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तित्वाभाव' व्याप्ति है।

विपक्षावृत्तित्वावच्छिन्नाभावस्य वा साध्याभावस्तोमस्याधिकरणाप्रसिद्धेरत आह साकल्यं साध्याभावावतीति जागदीशी ।

[200]वह्निमान्धूमादित्यादावव्याप्तिवारणार्थे व्यापकताशरीरे प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्यावश्यं निवेशनीयत्वात् । तन्निवेशे च हेत्वेभावे एतद्वृक्षत्ववान् कपिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिवारणार्थे प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नत्वस्यावश्यकत्वमिति ध्येयम् ।

तब लक्षण का स्वरूप है-

“साध्यवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेदाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।”

असद्धेतुकस्थल में ‘धूमवान् वह्नेः’ में धूमवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेद- धूमवान् न, इस भेद का अधिकरण अयोगोलक, तन्निरूपित वृत्तिता ही वह्नि में विद्यमान होने से नातिव्याप्ति। धूमवान् वह्नेः स्थल में धूमवन्निष्ठप्रतियोगिताकभेद, धूमवान् न, इस भेद का अधिकरण जलह्रद तन्निरूपितवृत्तित्वाभाव वह्नि में विद्यमान होने से अथवा धूमवदन्यनिरूपितवृत्तित्वजलत्वोभयाभाव के वह्नि में रहने से अतिव्याप्ति होती है तब तादृश अतिव्याप्ति के समाधान हेतु “तादृशवृत्तित्वभावश्च तादृशवृत्तित्वसामान्याभावो बोध्यः” अर्थात् वृत्तित्वाभाव शब्द का वृत्तित्वसामान्याभाव यह अर्थ विवक्षित है, ऐसा अर्थ करने से अतिव्याप्ति का वारण हो जायेगा।

आचार्यों का मत विशेष :-

दीधिति तथा जागदीशी का मत विशलेषण :-

“धूमाभावव्याप्यवान् वह्न्यभाववत्” इस स्थलीय हेतु में चतुर्थ लक्षण की जो अव्याप्ति होती है उस अव्याप्ति परिहार के लिए पञ्चम लक्षण का उद्भावन किया गया है।[201] पञ्चम लक्षणान्तर्गत -अन्योन्याभाव को साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगकताकत्वेन ग्रहण करना चाहिए। अन्यथा समवायेन वह्निमान् न इस भेद का अधिकरण पर्वत होगा, तन्निरूपित वृत्तिता धूम में रहगी अतः अव्याप्ति होगी। तब अव्याप्ति परिहार के लिये तादृश साध्यवत्त्वाच्छिन्न इत्यादि रूप से अन्योन्याभाव को ग्रहण करना चाहिए। इस रूप में अन्योन्याभाव का ग्रहण किया जाये इसके प्रमाण में यह कहा जा सकता है कि वह व्युत्पत्तिलभ्य है।[202] अर्थात् शक्तिनिरूढालक्षणा अन्तर से समझना चाहिये। साध्य एवं साध्यवत् पद का व्यावृत्ति प्रथम लक्षण के अनुसार समझना चाहिये। वस्तुतः जगदीश ने पञ्चलक्षणी के विचार में अनेक स्थलों को लेकर शाब्दबोध प्रक्रिया को प्रदर्शित किया है। उनमें भी “पदार्थः पदार्थेनान्वेति न तु पदार्थैकदेशेन”। इस प्रकार की व्युत्पत्ति को लेकर तत्तत् स्थलों में अन्वय प्रक्रिया को प्रदर्शित किया है।

---

[201] तत्र निर्धूमत्वादिव्याप्यतत्त्वेन साध्ये निर्वन्हित्वादौ चाव्याप्तिस्तत्र हेत्वभावस्य वन्ह्यादेः प्रत्येकं यावद्विपक्षावृत्तित्वादत आह- साध्यवदिति। व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-११९-१२०

[202] अत्राऽन्योन्याभावस्य साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं व्युत्पत्तिबललभ्यम्। व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१२०-१२१

गदाधरभट्टाचार्य का मत विश्लेषण :-

एकव्यक्ति साध्यकस्थल में अव्याप्ति परिहार के लिए पञ्चम लक्षण का उद्भावन किया गया है। स्वयं गदाधर लिखते हैं।[203] यहाँ पर साध्यवत् को साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यवत्त्वाच्छिन्न के रूप में समझना चाहिए। अर्थात् साध्यवत्व को साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से न समझा जाये तो समवायेनवह्न्याभाव को लेकर "वह्निमान् धूमात्" स्थल में अव्याप्ति दोष होगा। पञ्चम लक्षण में प्रविष्ट अन्योन्याभाव का साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व के रूप में ग्रहण किया जाता है, वह व्युत्पत्तिलभ्य है। पञ्चम लक्षण का विस्तृत विचार पूर्ववत् समझना चाहिये।

समस्त लक्षणों का केवलान्वयि साध्यकस्थल में अर्थात् "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" इस स्थल में वाच्यत्वाभाव अप्रसिद्ध होने से प्रथम लक्षण की, वाच्यत्ववद्भिन्न अप्रसिद्ध होने से द्वितीय लक्षण की, वाच्यत्ववद् अन्योन्याभाव, वाच्यत्ववान् न इस प्रकार भेद के अप्रसिद्ध होने पर तृतीय लक्षण की, वाच्यत्वाभाव के अधिकरण अप्रसिद्ध होने से चतुर्थ लक्षण की, तथा वाच्यत्ववदन्य की अप्रसिद्धि होने से पञ्चम लक्षण की ज्ञेयत्व हेतु में अव्याप्ति होती है। इसी को दृष्टि में रखते हुये केवलान्वयि साध्यकसद्धेतु स्थल में अव्याप्ति का उद्भावन स्वयं मणिकार ने किया है।[204]

पञ्चलक्षण के सन्दर्भ में कालिशङ्कर ने अपने जागदीशी क्रोडपत्र में कोई विवरण प्रस्तुत नहीं किया है।

केवलान्वयिन्यभावात्

नव्यन्यायप्रवर्तक गङ्गेशोपाध्याय केवलान्वयिसाध्यकसद्धेतुस्थल "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" में पूर्वोक्त पाँचों लक्षणों की अव्याप्ति स्वीकृत होने से पाँचों लक्षण व्याप्ति नहीं है। व्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यकस्थल यथा 'इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्' एवं अव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयि

---

[203] एतल्लक्षणं दूषयित्वोत्तरलक्षणमवतारयति 'यत्रैकव्यक्तिकम्' इति। यत्रैकव्यक्तिकं साध्यं तत्राव्याप्तिरित्यन्वयः। व्याप्तिपञ्चकजागदीशी, पृ.सं.-१२०-१२१

[204] केवलान्वयिन्यभावात् - मणिकार।

मूले 'केवलान्वयिन्यभावात्' इत्यादावेतादृशलक्षणपञ्चकस्य केवलान्वयिन्यप्रसिद्धेरित्यर्थः। गादाधरी

साध्यकस्थल यथा “कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्” के भेद से केवलान्वयि साध्यक स्थल दो प्रकर के स्वीकृत किये गये हैं। “इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्” स्थल में प्रथमलक्षण, द्वितीयलक्षण और तृतीयलक्षण में साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाव के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति होती है। तथा तृतीय और पञ्चम लक्षण में साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद (स्वरूपसम्बन्धेन वाच्यत्ववान् न) के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति होती है।

उपसंहार

न्यायशास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, तथा शाब्द भेद से प्रमाण प्रसिद्ध है, इनके साध्य भी प्रमा प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, तथा शाब्द भेद से चार प्रसिद्ध हैं। बहुवादी सम्मत एवं प्रत्यक्ष के उपर जीवक होने से प्रत्यक्ष के पश्चात् अनुमान का निरूपण किया गया है। अनुमिति करण अनुमान है, करणत्व में मतभेद प्राप्त होते हैं, जो “फलायोगव्यच्छिन्नं कारणं करणम्” मानते हैं, उनके मत में लिङ्गपरामर्श अनुमान है। और “व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्” के करणवादी के मत में व्याप्तिज्ञान अनुमान है। व्याप्तिज्ञान के विषयीभूत व्याप्ति, वह व्याप्ति क्या है? ऐसी जिज्ञासा को समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मीमांसको के अभिमत पाँच पूर्वपक्ष व्याप्ति लक्षण को तत्त्वचिन्तामणिकार गङ्गेःशोपाध्याय ने प्रस्तुत किया है। वे पाँचों लक्षण इस प्रकार हैं-

१ साध्याभाववदवृत्तित्वम्
२ साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्
३ साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्
४ सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगितगत्वम्

५ साध्यवदन्यावृत्तित्वम्

प्रथम लक्षण साध्याभाववदवृत्तित्वम् है, अर्थात् "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" यहाँ पर वह्नि का व्याप्य धूम है, साध्याभाववद् अवृत्तित्व सम्बन्ध से इस प्रकार पाँच लक्षण का साक्षात् विचार ग्रन्थ माथुरी है और रघुनाथशिरोमणि की दीधितिटीका विद्यमान है। दीधिति टीका को आश्रित करके जगदीशतर्कालङ्कार ने जागदीशी तथा गदाधर भट्टाचार्य ने गादाधरी टीका की संरचना की है।

मथुरानाथ ने प्रथम लक्षण के समास विचार में "न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः' इत्यनुशासनविरोधात् ।" इस प्रकार के अनुशासन को प्रदर्शित करते हुए कर्मधारय समास के उत्तर मत्त्वर्थीय प्रत्यय करना युक्ति सङ्त नहीं है। इसीलिये अन्ततोगत्वा त्रिपदव्यधिकरणबहुव्रीहि के उत्तर त्व प्रत्यय करके ही प्रथम लक्षण का विचार किया है। यहाँ धातव्य है, इस कर्मधारयसमास के उत्तर मत्त्वर्थीय प्रत्यय करना इस प्रकार का अनुशासन सर्वथा सार्वत्रिक नहीं है, क्योंकि असुबब्त्, नीलोत्पलवत्सरः इत्यादि स्थलों में कर्मधारय के उत्तर मत्त्वर्थीय प्रत्यय किया गया है, इसीलिये त्रिपदव्यधिकरणबहव्रीहि के उत्तर त्व प्रत्यय करके जो अर्थ मथुरानाथ प्रतिपादित करते हैं, वह सर्वथा विवेचनीय है, क्योंकि त्रिपदव्यधिकरण बहुव्रीहि सर्वथा साधु नहीं है। इस पर विचार की आवश्यकता है।

प्रथमलक्षण के समास के सन्दर्भ में दीधितिकार रघुनाथशिरोमणि, गदाधरभट्टाचार्य, जगदीशतर्कालङ्कार ने कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया है।

प्रथम लक्षण के विचार प्रसङ्ग में धूमाभाव के अधिकरण अयोगोलक को लेकर जो अतिव्याप्ति की प्रसक्ति होती है, उसके वारणार्थ मथुरानाथ ने वृत्तित्वाभाव को वृत्तित्वसामान्याभाव के रूप में स्वीकार करना आवश्यक माना है।

उसी प्रकार "वह्निमान् धूमात्:" इत्यादि स्थलों में अव्याप्ति परिहारार्थ साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकाच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाव के रूप में परिष्कार करना आवश्यक है। साध्याभावाधिकरण यदि जिस किसी सम्बन्ध से स्वीकार करते हैं, "गुणत्ववान् ज्ञानत्वात्" यहाँ पर विषयितासम्बन्ध से एवं "सत्तावान् जातेः" यहाँ पर अव्याप्यत्वसम्बन्ध से साध्याभाव के अधिकरण को लेकर अव्याप्ति होगी। वस्तुतः अव्यभिचरितत्व को व्याप्ति के रूप में प्रभाकर मीमांसक के सम्प्रदाय स्वीकार किया है, वह अव्यभिचरितत्व निम्नोक्त पाँचों के स्वरूप नहीं हो सकते, क्योंकि केवलान्वयिसाध्यकस्थल में लक्षण की अव्याप्ति होती है। इसीलिये यह पाँचों लक्षण यथार्थ व्याप्ति स्वरूप न होने के कारण पूर्वपक्ष के रूप में इसका उपस्थान चिन्तामणिकार ने किया है। इस अव्याप्ति के

परिहारार्थ यदि स्वरूप सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण स्वीकार किया जाये उपयुक्त स्थलद्वय हेतु में अव्याप्ति परिहार होने पर भी "घटत्वात्यन्ताभाववान् पटत्वात्" स्थलीय पटत्व हेतु में अव्याप्ति की प्रसक्ति होगी, इसीलिये साध्याभाव के अधिकरण का भी कोई नियामक सम्बन्ध होगा जिसका परिष्कार मथुरानाथ ने किया है।

"कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" स्थलों में अव्याप्ति परिहारार्थ यदि निरवच्छिन्नत्वाधिकरण स्वीकार करते हैं तो "कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्" स्थल में अव्याप्ति होगी। इस प्रकार अव्याप्ति केवलान्वयि स्थल की तरह मथुरानाथ को अभिमत है।

इस प्रकार जो विवेचन माथुरी में प्राप्त होता है जागदीशी, गादाधरी एवं कालीशङ्करी इन तीनों टीकाओं में प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु सङ्गति के निरूपण में अर्थात् अनुमान प्रामाण्य के निरूपण के अनन्तर व्याप्ति निरूपण में उपोद्घात सङ्गति का प्रदर्शन जिस प्रकार मथुरानाथ ने किया है, उसी प्रकार का सङ्केत गदाधर ने गादाधरी में भी किया है। दीधितिकार ने अनुमान प्रामाण्य परीक्षा के कारण जो व्याप्तिग्रह उपाय, उस व्याप्तिग्रहोपाय के निदान भूत व्याप्ति स्वरूप का निरूपण किया जाता है। इस प्रकार सङ्केत जो दीधिकतिकार ने किया गादाधर एवं जगदीश ने भी तदनुरूप विचार प्रकट किये हैं। गादाधर ने अपनी टीका में "नन्वनुमिति हेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः" इस- प्रकार वाक्य को प्रश्न वाक्य "न तावद् अव्यभिचरितत्वम्" अव्यभिचरितत्व वाक्य को साध्य वाक्य एवं केवलान्वयिन्यभावात् इस वाक्य को हेतु वाक्य के रूप में प्रस्तुत किया है। एवं प्रथम लक्षण के परिष्कार के सन्दर्भ में जगदीश तर्कालङ्कार ने कोई विशेष विचार प्रस्तुत नहीं किया है। किन्तु गदाधरभट्टाचार्य ने सङ्केत के मात्र से ही उपस्थापन किया है, कोई विशेष विचार इनके टीका में उपलब्ध नहीं है।

कालीशङ्कर ने भी प्रथम लक्षण के उपर कोई विशेष विचार नहीं किया है। प्रथमलक्षण के उपर मथुरानाथ ने ही विशेष रूप से अपना अभिमत प्रस्तुत किया है।

"साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्" यह पूर्वपक्ष व्याप्ति का द्वितीय लक्षण है। मथुरानाथ ने "कपिसंयोगाभाववान्" यहाँ पर साध्याभाव के निरवच्छिन्नाधिकरण के अप्रसिद्ध होने के कारण अव्याप्ति होती है, उसके कारण अधिकरणता में निरवच्छिन्नत्व का विशेषण देकर "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" में अव्याप्ति परिहार करना युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं होता है। इसीलिये द्वितीयलक्षण का उद्भावन किया गया है ऐसा मथुरानाथ का अभिमत है।

द्वितीय लक्षण के प्रारम्भ में "साध्याभाववद्भिन्नो यो साध्याभाववान् तदवृत्तित्वम्" इस प्रकार जो कर्मधारय समास प्राचीनों ने किया है, वह सम्यक् नहीं है, क्योंकि साध्याभाववत् पद की वैयर्थ्य

की आपत्ति आयेगी इसलिये मथुरानाथ ने साध्यवद्भिन्नसाध्याभाव इस प्रकार सप्तमी तत्पुरुषोत्तर मत्त्वर्थीय प्रत्यय का विधान किया है। जगदीशतर्कालङ्कार ने समास के सन्दर्भ में कोई विचार प्रतिपादित नहीं किया है। किन्तु गदाधरभट्टाचार्य ने कर्मधारय समास में अव्याप्ति को प्रदर्शित करते हुए सप्तमी तत्पुरुष में अपनी सम्मति व्यक्त की है। यद्यपि मथुरानाथ ग्रन्थ में "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" स्थल में अव्याप्ति परिहारार्थ साध्यवद्भिन्नत्व का विशेषण साध्याभाववत् पद में प्रदर्शित किया है। जगदीश एवं गदाधर तथा कालीशङ्कर, दीधिति के अनुसार अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतु में अव्याप्ति परिहार करने के लिये साध्यवद्भिन्नत्व साध्याभाव में विशेषण दिया गया है। कालीशङ्कर ने मथुरानाथोक्त साध्याभावपद की वैयर्थ्य के चलते जो अव्याप्ति प्रदर्शित किया है, उसी का समर्थन किया है। नव्य के मत का उद्धरण देते हुये मथुरानाथ ने "संयोगि द्रव्यत्वात्" में अव्याप्ति परिहारार्थ साध्यवद्भिन्नत्व साध्याभाव में विशेषण दिया है। यहाँ पर भी "अधिकरणभेदेन अभावभेदात्" इस प्रकार अनुशासन का विस्तृत विवेचन गदाधर ने अपने व्याख्या में प्रस्तुत की है। जगदीश ने, जिस सम्बन्ध अथवा जिस धर्म से साध्यता है उससे विशिष्टसाध्याभाव का ग्रहण करना चाहिये, ऐसा न करने पर व्याप्यवृत्ति साध्यक स्थल में भी विशिष्टाभाव को लेकर अव्याप्ति की प्रसक्ति होगी ऐसा मानते हैं। द्वितीय लक्षण के परिष्कार में टीकाकारों ने जो अभिमत व्यक्त किया इसका विचार शोधार्थी द्वारा तत्तत् स्थलों के विचार प्रसङ्ग में किया है।

तृतीयलक्षण अन्योन्याभाव घटित लक्षण है। अधिकरण भेद से अभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। इसमें कोई प्रमाण न होने के कारण तृतीय लक्षण का उद्भावन किया गया है। इस प्रकार जो दीधितिकार ने व्याख्या की है। जगदीशतर्कालङ्कार एवं गदाधरभट्टाचार्य ने भी तदनुरूप ही व्याख्या प्रस्तुतु की है। किन्तु मथुरानाथ ग्रन्थ में तृतीयलक्षण के उद्भावन में कोई बीज निर्वचन नहीं किया है। मथुरानाथ ने कहा अन्योन्याभाव का प्रतियोग्यवृत्तित्वेन विशेषित करना चाहिए अन्यथा असम्भव दोष की आपत्ति आयेगी किन्तु नानाधिकरण साध्यकस्थल में अव्याप्ति परिहारार्थ यदि प्रतियोग्यवृत्तित्व का परित्याग करके साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिता का अन्योन्याभाव का विवक्षा रखते हैं तब पञ्चम लक्षण के साथ अव्याप्ति की आपत्ति आयेगी, उसके वारणार्थ तृतीयलक्षण में अधिकरणत्वेन प्रवेश तथा पञ्चमलक्षण में वत्त्वेन प्रवेश इसीलिये शब्द भेद होने के कारण पुनरुक्ति की आपत्ति नहीं होगी । वस्तुतः अधिकरणत्व एवं वत्त्व में भेद है। यथा "चैत्रस्य धनम्" यहाँ पर धन का अधिकरण चैत्र प्रसिद्ध नहीं है, किन्तु धन का स्वामी चैत्र यह प्रसिद्ध है। इसीलिये वत्त्व और अधिकरणत्व में भेद मानकर ही दोनों लक्षण की व्याख्या की गई है।

जगदीशतर्कालङ्कार कर्मादि में रहने वाला संयोगाभाव, गुणवृत्ति संयोगाभाव दोनों में कोई भेद न होने के कारण अव्याप्यवृत्तिसाध्यतावच्छेदकसम्बन्ध में अव्याप्ति होगी। इस अव्याप्ति परिहारार्थ तृतीय लक्षण का उद्भावन करना आवश्यक है।
तृतीयलक्षण के विचार प्रसङ्ग में कालीशङ्कर ने कोई विचार प्रस्तुत ही नहीं किया है। गदाधर ने दीधिति के अनुरूप "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" में अधिकरण भेद से अभाव की भिन्नता में कोई प्रमाण न होने के कारण तृतीयलक्षण का उद्भावन किया है। इस प्रकार केवल दिग् प्रदर्शन मात्र प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ लक्षण "सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगितगत्वम्" यह लक्षण व्यतिरेक व्याप्ति घटित लक्षण है। साकल्यपद साध्याभाववत् में विशेषण है, क्योंकि "धूमवान् वह्नेः" इत्यादि स्थलों में अतिव्याप्ति परिहारार्थ "यावत्" पद साध्याभाववत् में विशेषण देना आवश्यक है। इसी प्रकार व्याख्या दीधिति ग्रन्थ एवं उनके व्याख्या ग्रन्थ जागदीशी एवं गादाधरी में भी उपलब्ध है। कालीशङ्कर ने भी जगदीश प्रतिपादित सिद्धान्त को अनुसरण करते हुए अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। तत्तत् स्थलों में अव्याप्ति एवं अतिव्याप्ति परिहार करने के लिये टीकाकारों ने शब्दान्तरों के द्वारा अपना मत प्रस्तुत किया है। इस विस्तृत विचार को शोधार्थी ने अपने शोध प्रबन्ध में बताया है।

पञ्चम लक्षण अन्योन्याभाव घटित लक्षण है, "साध्यवदन्यावृत्तित्वम्" । मथुरानाथ ने प्रथम लक्षण के अनुरूप वृत्तित्व को हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से तथा साध्यवत् को साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध इत्यादि से घटित विचार प्रस्तुत किये हैं। दीधितिकार ने एकव्यक्तिसाध्यकस्थल में अव्याप्ति -परिहार करने के लिये एवं धूमाभाववान् वह्न्याभावात् एतत् स्थल में अव्याप्ति परिहारार्थ साध्य में साकल्य विशेषण घटित लक्षण का परित्याग करते हुए पञ्चम लक्षण का उद्भावन किया है। तदनुरूप गदाधर एवं जगदीश ने भी अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। कालीशङ्कर ने जो विशेष्य प्रतिपादन किया है, उसके प्रकरण के निर्वचन में शोधार्थी ने विस्तृत विवेचन की है।
समीक्षा की दृष्टि में यह कहा जा सकता है कि प्रथम लक्षण में जो विचार मथुरानाथ ने किया है, उस प्रकार का विचार अन्य टीकाओं में उपलब्ध नहीं है। द्वितीयादि लक्षण विचार प्रसङ्ग में मथुरानाथ ने मणिग्रन्थ को आधार मानकर अपना विचार तथा लक्षण का परिष्कार किया है। गदाधर एवं जगदीश दीधिति ग्रन्थ को आधार मानकर ही स्वव्याख्या प्रस्तुत की है, एवं जगदीश की व्याख्या में स्थल विशेष में जो न्यूनता या अस्पष्टता है उसको स्पष्ट करने के लिये कालीशङ्कर ने अपनी व्याख्या में प्रयास किया है।

वस्तुतः यह पाँच लक्षण केवलान्वयि स्थल में अर्थात् “इदं वाच्यम् ज्ञेयत्वात्” स्थल में ‘वाच्यत्वाभाव’ के अप्रसिद्ध होने से प्रथमलक्षण में अव्याप्ति, ‘वाच्यत्वद्भिन्न’ के अप्रसिद्ध होने से द्वितीय लक्षण में अव्याप्ति, ‘वाच्यत्ववान् न’ इस प्रकार भेद के अधिकरण के अप्रसिद्ध होने पर तृतीयलक्षण की अव्याप्ति, ‘वाच्यत्वाभाव’ के अप्रसिद्ध होने पर चतुर्थलक्षण की अव्याप्ति, तथा ‘वाच्यत्वदन्य’ के अप्रसिद्ध होने से पञ्चमलक्षण की अव्याप्ति केवलान्वयि हेतु में प्रसिद्ध है। इसीलिये मणिकारोक्त केवलान्वयिन्याभावात् इस प्रकार पङ्क्ति के स्वारस्य को सभी टीकाकारों ने स्वीकार किया है।

उपयुक्त स्थल में अव्याप्ति परिहार करने के लिये सिद्धान्त लक्षण का उद्भावन किया गया है। शोधार्थी ने सामर्थ्यानुसार तत्तत् टीकाकारों के मत विचार प्रसङ्ग में स्वाभिमत प्रस्तुत किया है।

परिशिष्ट

अथ पञ्चलक्षणीजागदीश्याः
श्रीकालीशङ्करविरचितं क्रोडपत्रम्

अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेताविति शिरोमणिः। कपिसंयोगी गगनादित्यादावव्याप्तिविरहाद्वृत्तिमद्धेतावव्याप्त्यर्थं सत्पदम् । अथैवमपि कपिसंयोगाभाववान् गुणत्वादित्यादावव्याप्तिर्न सम्भवतीति कथम् अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुत्वावच्छेदेनाव्याप्तिरुक्ता । न चाव्याप्यवृत्ति साध्यं यत्रेति व्युत्पत्त्या तत्र सन् वर्त्तमानो यो हेतुस्तत्राव्याप्तिरिति वाच्यम् । तथा सति अव्याप्यवृत्ति साध्यके हेतुरिति समासेनैव गगनहेतुनिराकरणे सत्पदवैयर्थ्यापत्तेः , अपि च संयोगाभावसाध्यकद्रव्यत्वहेतावव्याप्तिसम्भवे द्वितीयलक्षणेऽपि तद्वारणायोगात् । तस्मात् केवलान्वयिभिन्नाव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्धेतुत्वाच्छेदेनाव्याप्तिवारणाय द्वितीयलक्षणमिति युक्तमुत्पश्यामः ।।१।।

साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभाववान्श्चेति कर्मधारये साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः अतः सप्तमीसमासः कृतः । न च तत्रापि साध्यवद्भिन्नेऽभाव इत्यास्तां किं साध्यपदेन, अधिकरणभेदेनाभावभिन्नत्वमतेनैवैतल्लक्षणकरणात् गगनाभावादिकमादायाव्याप्तिविरहादिति वाच्यम् । स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्ने वर्तते यः समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावस्तद्वति हेतोर्वृत्तितयाऽव्याप्तिवारणाय साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितालाभाय साध्यपदमिति जगदीशः। अत्रेयमाशङ्का । एवं सति स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववानिति कर्मधारयः कथं परित्यक्त इति विभावनीयम् । अत्र केचित् । सप्तमीसमासपक्षे स्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्भिन्ने यः साध्यताघटकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्तद्वदवृत्तित्वमेव वाच्यम् । अन्यथा साध्यताघटकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावमात्रनिवेशे घटभिन्नस्य तादात्म्येन साध्यत्वे पटत्वादिहेतौ द्रव्यत्वात्मकं द्रव्यभिन्नभेदमादायाव्याप्त्यापत्तेरभावाभावस्यातिरिक्तत्वेऽपि तद्भिन्नभेदस्य तत्स्वरूपत्वोगमात् । कर्मधारयपक्षे तु साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वनिवेशवैयर्थ्यमिति ध्येयम्।।

केचित्तु कर्मधारयपक्षेऽभावत्वेनाभावप्रवेशवैयर्थ्यम् साध्यताघटकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमात्रेणाभावनिवेशस्यैव सम्यक्त्वात् । सप्तमीतत्पुरुषसमासपक्षे तु तदनिवेशे एकधर्मावच्छिन्नाधिकरणत्वस्यैक्यमते साध्यवद्भिन्नवृत्ति

साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वावच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणत्वमादाय वह्निमान्धूमादित्यादावव्याप्तिरतस्तद्वारणायाभावत्वेनाभावनिवेशः, निरूपकताया अपि सम्बन्धप्रतियोगित्वाभिन्नत्वात्। न चाभावीयाधिकरणत्वीयप्रतियोगित्वयोरेकजातीयत्वमप्रामाणिकमिति वाच्यम् । तयोरेकजातीयत्वस्य केवलान्वयिग्रन्थे भट्टाचार्येणक्तत्वादित्याहुः (१) । उच्छृङ्खलास्तु साध्यवद्भिन्नश्चासौ साध्याभावश्चेति कर्मधारयोत्तरमतुप्प्रत्ययः । तत्र साध्यवत्त्वं स्वप्रतियोगिकत्वस्वसामानाधिकरण्योभयसम्बन्धेन एवं च प्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वं साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं च न देयं सामानाधिकरण्यमात्रस्य सम्बन्धत्वे घटाभावादेरपि तादृशसम्बन्धेन साध्यवत्तया तमादायाव्याप्तिविरहेण साध्याभाव इत्यत्र साध्यपदवैयर्थ्यापत्तेः । स्वप्रतियोगिकत्वमात्रस्य सम्बन्धत्वे तादृश साध्यवद्भिन्नसाध्याभावाप्रसिद्धिरतो द्वयमुपात्तम्। विशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्तिवारणाय स्ववृत्तिसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यसम्बन्धेन साध्यवत्त्वमित्याहुः। तन्न । साध्याभाव इत्यत्र साध्यपदसार्थक्याय स्वप्रतियोगिकत्वघटितसम्बन्धानुधावनं प्रक्षालनाद्धीत्यादिन्यायेनायुक्तं, सामानाधिकरण्यमात्रसम्बन्धेनैव साध्यवत्त्वविवक्षणे सर्वदोषाभावात् । विशेषणताविशेषसम्बन्धेनाभावाधिकरणत्वं सामानाधिकरण्यघटकवृत्तित्वं च वक्तव्यम्। सर्वत्र गगनघटितोभयाभावं व्यधिकरणसम्बन्धेन साध्याभावं विपक्षमात्रवृत्त्यभावं चादायाव्याप्तिवारणसम्भवात्, अधिकरणभेदेनाभावभेदादिति।।२।।

सकलेति । साकल्यं साध्याभाववति साध्ये च बोध्यमिति दीधितिग्रन्थः । तत्र साध्याभाववति साकल्यविशेषणे दत्ते एव साध्ये साकल्यविशेषणं सार्थकमतः प्रथमतः साध्याभाववति साकल्यविशेषणमिति प्राञ्चः । तन्न मनोरमम् । गगनावृत्तिधर्मवान् द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिरिति जगदीशः । अत्रेयमाशङ्का । ननु साकल्यविशेषणे दत्तेऽपि गगनत्वसाध्योभयाभावमादायातिव्याप्तिरिति चेत् । न । इदानीं व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नत्वं प्रतियोगितायामस्तीत्यभिप्रायात् ।।

अत्रेदं तत्त्वम् । साध्ये साकल्यविशेषणस्य वास्तवं फलं यदव्याप्तिवारणं तदग्रे न सम्भवतीति प्राचामाशयः । न च गगनैतद्द्रूपोभयवान् एतद्रसादित्यादौ साध्याभाववति साकल्यविशेषणे दत्तेऽप्यतिव्याप्तिस्तत्र साध्यप्रतियोगिकस्य एतद्रूपाभावस्याधिकरणे हेतोरभावात् । गगनैतद्रूपोभयत्वावच्छिन्नाभावस्य च प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नव्यधिकरणत्वाभावात् तादृशसकलसाध्याभावाप्रसिद्ध्या एव नास्माकमतिव्याप्तिरिति साध्ये साकल्यविशेषणस्य फलमपि वास्तवमतिव्याप्तिः प्रथमतो भवतीति वाच्यम् । तत्र साध्ये साकल्यविशेषणासत्त्वेऽपि एतद्घटावृत्तित्वावच्छिन्नाभावं तद्द्रूपगगनान्यतराभावं चादायातिव्याप्तिवारणसम्भवेन तस्यावान्तरफलत्वाभावात्,

साध्याभाववति साकल्यविशेषणेन यत्फलं न भवति तस्यैव साध्ये साकल्यविशेषणस्य फलत्वात् । वस्तुतस्तु साध्याभाववतीत्युक्ता साध्याभावो वा साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको ग्राह्य इत्युक्तौ साध्याभावो वेत्यनेन सह साध्याभाववति साकल्यविशेषणस्यापि सान्निध्येन वैकल्पिकसंशयः स्यात् स च नावगच्छेत् अतः साध्याभाववति साध्ये चेत्युक्तमिति गदाधरभट्टाचार्यः।

अत्र हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नव्यधिकरणापेक्षया प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिव्यधिकरणाभावीयहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगित्वनिवेशनं यद्यपि गुरु, तथापि यथा सन्निवेशे न वैयर्थ्यम् । वस्तुतः साध्याभाववत्सकलनिष्ठहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नस्वप्रतियोग्यनधिकरणताकाभावप्रतियोगित्वापेक्षया हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नयत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं साध्याभाववतस्तत्प्रतियोगित्वरूपं लाघवेनास्तामिति तन्नोक्तम् । न चास्माकमपि यद्धर्मावच्छिन्नानधिकरणं साध्याभाववत्तद्धर्मवत्त्वरूपस्य तदपेक्षया लाघवमिति वाच्यम् । तथा सति व्याप्तेः प्रतियोगित्वरूपत्वानुपपत्त्या मूलासङ्गतिः।।३।।

सकलस्य साध्यप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणाप्रसिद्ध्या व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिवारणार्थं यदि साध्याभावस्य विशेषणं साकल्यं तदा वह्निमान्धूमादावव्याप्तिस्तत्रापि सपक्षावृत्तित्वावच्छिन्नाभावस्य विपक्षावृत्तित्वावच्छिन्नाभावस्य वा साध्याभावस्तोमस्याधिकरणाप्रसिद्धेरत आह साकल्यं साध्याभावावतीति जागदीशी । अत्रायं भावः । तत्रोक्तसाकल्यविशेषणं किं दोषवारणाय कुत्र देयमित्याशङ्कायां गगनावृत्तिधर्मवान् द्रव्यत्वात् इत्यात्रातिव्याप्तिवारणाय साकल्यस्य साध्यांशे विशेषणत्वेऽपि धूमवान् वह्नेरित्यादावतिव्याप्तिवारणासम्भव इति सर्वत्रातिव्याप्तिवारणार्थं साध्याभाव एव विशेषणं देयमिति पुनः सकलसाध्याभावाधिकरणाप्रसिद्ध्याव्याप्तिरित्युक्तं यावदतिव्याप्तिवारणाय साकल्यं प्रथमतः साध्याभावविशेषणं न तु साध्ये इति । अत्रेयमाशङ्का । ननु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धाच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य लक्षणे निवेशनीयता तमादाय कथमव्याप्तिरिति वाच्यम् । अभावद्वये प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नत्वस्यावश्यं निवेशनीयता समवायादिसम्बन्धाच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावमादाय दोषाभावात् एतल्लक्षणे तस्यानिवेशनीयत्वादन्यथा धूमवान् वह्नेरित्यादौ संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य गुणादावेव सत्त्वादप्रसिद्ध्यमिधानस्योन्मत्तप्रलापापत्तेः । अथवा धूमवान् वह्नेरित्यादावतिव्याप्तिवारणार्थं साध्याभावाधिकरणे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन किञ्चिद्धर्मवत्त्वस्य विशेषणीयतया संयोगसंर्गेण च घटावृत्तित्वावच्छिन्नाभावपटावृत्तित्वावच्छिन्नाभावरूपसाध्याभावस्तोमस्याधिकरणे गुणादौ संयोगेन किञ्चिद्धर्मवत्त्वप्रसिद्ध्याव्याप्तेर्दुर्वारत्वात्। अथ प्रागुक्तायुक्त्याऽसम्भवसम्भवेऽव्याप्त्यभिधानमसङ्गतम् । न च तद्घटभिन्नं पटत्वादित्यादावेव लक्षणगमनान्नासम्भव इति वाच्यम् । अत्रापि

पटभेदावच्छिन्नाभावारूपसाध्याभावतोमस्याधिकरणाप्रसिद्धेर्दुर्वारत्वात् । न च पटभेदावच्छिन्नाभावस्य प्रतियोगित्वं घटादिभेदे स्वीक्रियते न तु तस्य प्रतियोगित्वं साध्येऽपीति वाच्यम् । तावत्पर्यन्तानुधावने धूमवान् वह्नेरित्यादौ घटावृत्तित्वावच्छिन्नाभावस्य प्रतियोगित्वं घटादिभेदे स्वीक्रियते न तु प्रतियोगित्वं धूमादावप्यतो(ऽतिव्याप्तिवारणाय (ग्रन्थासन्धानम्) लाघवानुसन्धानं नास्तीति वक्तव्यमिति चेत् सत्यम् । पटावृत्तिधर्मवान् घटत्वादित्यादौ लक्षणसमन्वयसम्भवान्नाऽसम्भव इति । न च पटभेदत्वावच्छिन्नाभावस्य मठावृत्तित्वावच्छिन्नाभावस्य घटावृत्तिधर्माभावस्य च साध्याभावस्तोमस्याधिकरणाप्रसिद्ध्यैवाव्याप्तिसम्भव इति वाच्यम् । तादृशाभावस्य यावत्साध्यप्रतियोगिकत्वविरहेण साध्याभावे यावत्साध्यप्रतियोगिकत्वविवक्षया तद्वारणात् । न च तत्पटावृत्तिधर्माभावतत्पटानुयोगिकस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रमेयाभावोभयात्मकसा ध्याभावस्तोमस्याधिकरणाप्रसिद्ध्यैवाव्याप्तिसम्भव इति वाच्यम् । विशेषरूपेण संसर्गत्वास्वीकारे क्षत्यभावात् । केचित् साध्ये साकल्यविशेषणदानेऽप्युभयपक्षे नित्यज्ञानानुयोगिकविषयत्वसम्बन्धाच्छिन्नावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटाभावे साध्ये पटत्वादिहेतौ लक्षणगमनान्नासम्भवस्तत्र साध्याभावस्याधिकरणत्वस्य नित्यज्ञाने सत्त्वादिति दिक् (१) ।।४।।

प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नसाध्याभावव्यापकतावच्छेदकं

प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नयद्धर्मावच्छिन्नाभावत्वं तद्धर्मवत्त्वं व्याप्तिरित्युक्तौ तु न कोपि दोष इति ध्येयमिति जगदीशः।। न च कपिसंयोग्येतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिवारणाय साध्याभावे प्रतियोगिवैयधिकरणस्य सार्थक्येऽपि हेत्वभावे प्रतियोगिवैयधिकरण्यमनर्थकमेव । न चैतद्वृक्षत्ववान् कपिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय तदिति वाच्यम् । तत्र साध्याभाववति जलादौ कपिसंयोगाभावस्य सत्त्वेऽपि तदवच्छिन्नभावस्यापि तत्र सत्त्वादिति चेन्न। द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिवारणाय प्रतियोगिवैयधिकरणस्य व्यापकताशरीरे देयत्वात् अन्यथा द्रव्यात्वाभाववति गुणादौ विशिष्टसत्त्वाभावत्त्वावच्छिन्नाभावस्य सत्तारूपतया सत्त्वेन विशिष्टसत्ताभावस्य व्यापकताच्छेदकत्वविरहात् अधुना तु तत्रापि विशिष्टसत्ताभावाभावस्य सत्त्वेऽपि तादृशाभावप्रतियोगिनो विशिष्टसत्ताभावस्य गुणादौ सत्त्वेन प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नाभावस्य व्यापकताशरीरे निवेशनीयतया तद्दोषवारणेऽपि वृक्षत्ववान् कपिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिर्दुर्वारैवेति तद्वारणाय हेत्वभावे प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नत्वविशेषणमवश्यं निवेशनीयमिति ध्येयम्। इदं तु यथाश्रुतमेवान्यथा साध्याभाववन्निष्ठाधिकरणतानिरूपकतावच्छेदकतावदनुयोगितानिरूपितप्रतियोगिताया अवच्छेदकत्वाभावस्य तादृशाभावत्वे निवेशनीयतयैव द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिवारणसम्भवे व्यापकताशरीरे प्रतियोगिवैयधिकरण्यमनादेयमिति ध्येयम् । केचित्तु व्यापकताघटकीभूताभावस्य साध्यभाववद्वृत्तित्वं यदि येन केनापि सम्बन्धेन तदा

वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिः वन्ह्यभाववति कालादौ कालिकसम्वन्धेन धूमाभावाभावस्य सत्त्वात् । नापि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन, सत्तावान् जातेरित्यादौ सत्ताभाववति सामान्यादौ प्रकृतहेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तित्वाप्रसिद्धेः। नापि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धान्यहेतुप्रतियोगिकसम्बन्धातिरिक्तसम्बन्धेन, सत्तावान् समवायेन प्रमेयादित्यादावव्याप्तेस्तत्रसमवायस्यैव निरुक्तसम्बन्धतया साध्याभाववति सामान्यादौ तेन सम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेः । एतेन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धान्य(१)हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वर्त्तमानहेतुप्रतियोगिकान्यसम्बन्धेन वृत्तित्वानिवेशान्न कोपि दोष इत्यापि निरस्तम् । निरुक्तस्थले स्वरूपसम्बन्धस्यापि तथात्वात् साध्याभाववति सामान्यादौ तेन सम्बन्धेन प्रमेयस्वरूपहेत्वभावाभावस्य वृत्तेरिति । नापि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धस्वरूपान्यतरसम्बन्धेन घटत्ववान् प्रमेयत्वादित्यादौ घटानुयोगिकस्वरूपसम्बन्धेन हेतुतायामव्याप्तिस्तत्र साध्याभाववत्पटादौ स्वरूपसम्बन्धेन हेतोर्वृत्तेरतो येन केन सम्बन्धेन वृत्तित्वं वह्निमान्धूमादित्यादावव्याप्तिवारणार्थे व्यापकताशरीरे प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्यावश्यं निवेशनीयत्वात् । तन्निवेशे च हेत्वेभावे एतद्वृक्षत्ववान् कपिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिवारणार्थे प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छिन्नत्वस्यावश्यकत्वमिति ध्येयम् ।।५।।

निर्धूमत्वव्याप्येति । निर्धूमत्वव्याप्याभाववति पर्वतमहानसादौ वह्न्यभावाभावस्य वह्निस्वरूपस्य यावद्विपक्षावृत्तित्वेऽपि वह्न्यभावभेदस्य यावद्विपक्षवृत्तित्वसम्भवात् नाव्याप्तिः । न चात्यान्ताभावानिवेशे धूमवान् वह्नेरित्यादावतिव्याप्तिरयोगोलके वह्निभेदसत्त्वादिति वाच्यम् । धूमाभाववति वह्न्यादौ वह्निभेदासत्त्वेनातिव्याप्तेरनवकाशादिति चेदत्र केचित् । वह्न्यभावान्यत्वविशिष्टनिर्धूमत्वव्याप्यवान् वह्न्यभावान्यत्व-विशिष्टनिर्वह्नित्वादित्यादावव्याप्तिस्तत्र साध्याभाववति वह्न्यभावे वह्न्यभावभेदात्मकहेतुभेदस्यासत्त्वात् पर्वतादौ च वह्न्यात्मकहेत्वभावस्य यावद्विपक्षावृत्तित्वादिति । न च वह्न्यभावान्यत्वविशिष्टवह्न्यभावाभावो न वह्निस्वरूपः किन्त्वतिरिक्त एवान्यथा वह्न्यभावे विशिष्टाभावबुद्ध्यनुदयप्रसङ्ग इति वाच्यम् । प्रतियोगितासंयोगान्यतरसम्बन्धेन वह्निनैवोपपतौ अतिरिक्ताभावानभ्युपगमादिति । अत्रेदं चिन्त्यम् ।

भवतु विशिष्टाभावो वह्निस्वरूपः तथापि संयोगेनैव वह्न्यभावाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वात् वह्न्यभावत्वस्येति नाव्याप्तिः । न च संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावाभावस्य संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाभावात्मकतया

उक्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकमभावत्वमिति हेतुतावच्छेदकस्यानवच्छेदकत्वादव्याप्तिस्तथापीति वाच्यम् । विषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावान्यत्वविशिष्टवह्न्यभावाभावास्य साध्याभाववति सर्वस्मिन्नेव सम्भवादव्याप्त्यभावात् । एवञ्च धूमाभावव्याप्यवान् वह्न्यभावादित्यत्र हेतुतावच्छेदकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन

प्रतियोगिव्यधिकरणविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावाभावस्य यावद्विपक्षे सत्त्वान्नाव्याप्तिरिति चेदत्र केचित् । वृत्त्यनियामकस्य व्यधिरणसम्बन्धस्य वा प्रतियोगितावच्छेदकत्वानङ्गीकारेण तत्राव्याप्तिरित्यभिप्रायेणायं ग्रन्थ इति ध्येयम् ।।६।।
इति श्रीकालीशङ्करविरचितं व्याप्तिपञ्चकजागदीशीक्रोडपत्रं समाप्तम् ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

प्राथमिक स्रोत

शङ्कर, काली. क्रोडपत्र. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत सीरीज, १८८७.

तर्कालंकार, जगदीश. तर्कामृतम्. सम्पा. बिष्णुपद महापात्र. नव देहली: मान्यता प्रकाशन, २००९.

मथुरानाथ, व्याप्तिपञ्चकरहस्य. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत संस्थान, १९९७.

पञ्चानन, विश्वनाथ. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली. सम्पा. श्वेतवैकुण्ठ शास्त्री. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत संस्थान,

तर्कालंकार, जगदीश, व्यधिकरणप्रकरणम्. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत संस्थान,

उपाध्याय, गङ्गेश. सिद्धान्त-लक्षणम्. वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत संस्थान,

अन्नम्भट्टः, तर्कसंग्रहः (स्वोपज्ञव्याख्यातर्कदीपिकासहितः). सं. दयानन्द भार्गव. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, १९७८.

मिश्र, केशव. तर्कभाषा(माधुरी हिन्दीव्याख्योपेता). व्या. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, वाराणसी:चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,२०१३.

द्वितीयक स्रोत

Gaur,Vibha.The Navya-Nyaya Logic. Delhi : Bharatiya Vidya Prakashan,1990.

Ingalls, D.H.H. Materials for the study of Navya-Nyāya Logic. HarvardOriental Series 40, Cambridge, Mass.: Harvard University Press, 1951.

Jha,Ujjwala. A Primer of Navya Nyaya Language and Methodology. Kolkata: The Asiatic Society, 2004.

Vidyabhooshan,S.C. History of Indian logic. Delhi: Motilal banarsidas publishers private limited, 2002.

Annambhatta, Tarkasangraha. Ed. V.N.jha. Kerala: Chinmaya International Foundation Shodha Sansthan, 2010.

Dasgupta, S.N. A history of Indian Philosophy. Cambridge University Press, 1957.

वेदालंकार,जयदेव. भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास. दिल्ली: न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, २००४.

शर्मा, राममूर्ति. भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा. दिल्ली: चौखम्भा ओरयन्टलिया, २००८.

शास्त्री, धर्मेन्द्रनाथ. भारतीय दर्शनशास्त्र (न्याय-वैशेषिक). बनारस: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, १९५३.

शुक्ल, बलिराम. नव्यन्याय के परिभाषिक पदार्थ (प्रथम खण्ड). पूणे: योग एन्टरप्राईजेस, १९२०.

हिरियन्ना, एम.. भारतीय दर्शन की रूपरेखा. दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, १९६९.

कोश ग्रन्थ

Jhalakikar,Bhimacarya. Nyaykosha. Poona: The Bhandarkar Oriental Research Institute, 1928.

अवस्थी,बच्चूलाल. भारतीय-दर्शन-बृहत्कोश. दिल्ली: शारदा पब्लिशिंग हाऊस, २०१२.

Karl, H. Potter. Encyclopaedia of Indian Philosophy. Delhi: Motilal Banarasi Das.

Jha,V.N.. Dictionary of Nyaya Terms. Centre of Advanced Study in Sanskrit University of Pune, 2001.